"शाण्डिल्योपनिषद् और योग"

(Shandilyaupanisada Aur Yoga)

स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू की
एम. फिल्. की उपाधि प्राप्ति हेतु प्रस्तुत
लघु-शोधप्रबन्ध

निर्देशक :
डॉ0 जगीर सिंह
प्राध्यापक
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय,
जम्मू तवी - 180006

शोध छात्रा
रामो देवी
एम.ए. (संस्कृत)
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

नवम्बर-2006

IInd copy

forwarded

30/11/06

Head of P.G. Deptt. of Sanskrit
University of Jammu.

"शाण्डिल्योपनिषद् और योग"

(Shandilyaupanisada Aur Yoga)

स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू की
एम्. फिल्. की उपाधि प्राप्ति हेतु प्रस्तुत
लघु-शोधप्रबन्ध

निर्देशक :
डॉ0 जगीर सिंह
प्राध्यापक
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय,
जम्मू तवी - 180006

शोध छात्रा
रामो देवी
एम.ए. (संस्कृत)
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू।

नवम्बर-2006

CERTIFICATE

It is to certify that ***Miss. RAMO DEVI*** has worked under my supervision and that work done by her is worthy of consideration for the award of Degree of Master of Philosophy in Sanskrit. The title of her dissertation is –

"शाण्डिल्योपनिषद् और योग"

(Shandilyaupanisada Aur Yoga)

It is further certified that :-

a) This dissertation is the original research work of the candidate herself.

b) The candidate has worked exactly in accordance for the time period, prescribed by statutes of Jammu University;

c) The Topic has been duly approved by the M.Phil (Sanskrit) Committee of the P.G. Deptt. of Sanskrit, Jammu University, Jammu.

d) The candidate has put her attendance and attended the Seminars in the Sanskrit Department under rule.

e) The work and conduct of the candidate remained satisfactory during her research period.

(Dr. Jagir Singh)
Supervisor,
Reader
P.G. Deptt. of Sanskrit,
Jammu University of Jammu
Tawi (J &K)

Dated :- Nov, 2K6.

विषयानुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	पृष्ठांक
A)	विषयानुक्रमणिका	अ - व
B)	शब्द संङ्केत सूची	क - ख
C)	प्राक्कथन	i - iii
1.	प्रथम अध्याय -	1 - 26
	1) शाण्डिल्य ऋषि और उपनिषद् परिचय	
	2) योग और ब्रह्म	
2.	द्वितीय अध्याय -	27 - 52
	क) योग से अभिप्राय, योग की आवश्यकता, ख) योग के अंग और प्रकार	
	यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि	
3.	तृतीय अध्याय -	53 - 79
	प्रमुख आसन प्रक्रिया तथा रोग-उपचार	
	1. स्वस्तिक आसन	
	2. गोमुख आसन	
	3. पद्म आसन	
	4. वीर आसन	
	5. सिंह आसन	
	6. भद्र आसन	

7. मुक्त आसन

8. मयूर आसन

4. चतुर्थ अध्याय - 80 - 85

नाड़ियाँ, उनकी शुद्धि, संख्या एवं उनमें वायु संख्या, स्थान और शरीर में कार्य।

5. पञ्चम अध्याय - 86 - 91

आधुनिक युग में योग एवं योगासनों की उपयोगिता

6. उपसंहार 92 - 95

7. ग्रन्थ सूची 96 - 98

शब्द संङ्केत सूची

संकेत		ग्रन्थ का नाम
1. अम0 को0	–	अमरकोष
2. अथ0 वे0	–	अथर्ववेद
3. कठो0 उप0	–	कठोपनिषद्
4. कठो0 उप0	–	कठोपनिषद्
5. कु0 यो0 त0	–	कुण्डलिनीयोग तत्त्व
6. च0 सं0	–	चरकसंहिता
7. ज0 यो0 प्र0	–	जयेन्द्रयोग प्रयोग
8. तेजो0 बि0 उप0	–	तेजोबिन्दुपनिषद
9. नि0 उप0	–	निर्गुणोपनिषद्
10. पा0 यो0 द0	–	पातञ्जलयोगदर्शन
11. पा0 या0 सू0	–	पातञ्जलयोगसूत्र
12. प0 पु0	–	पद्मपुराण
13. भा0 ब्रा0 गो0	–	भारतीय ब्राह्मणों की गोत्रावली
14. भ0 गी0	–	भगवद्गीता
15. भा0 म0 पु0	–	भागवद्महापुराण
16. म0 उप0	–	मण्डलोब्रह्मणोपनिषद्
17. यो0 आ0	–	योग और आयुर्वेद
18. यो0 ध्या0 क्रि0	–	योगासन और ध्यान क्रियाएं

19. योO साO संO	–	योगसारसंग्रह
20. लिंO पुO	–	लिंगपुराण
21. शाO उपO	–	शाण्डिल्योपनिषद्
22. श्वेO उपO	–	श्वेताश्वत्तरोपनिषद्
23. शुO यजुO	–	शुक्लयजुर्वेद
24. श्रीO मदO गीO	–	श्रीमदभगभद्गीता
25. सO दO संO	–	सर्वदर्शन संग्रह
26. साO वO	–	सारावली
27. सुO संO	–	सुश्रुतसंहिता
28. हठO योO प्रO	–	हठयोगप्रदीपिका

प्राक्कथन

मेरा जन्म धार्मिक विचारधारा रखने वाले परिवार में होने के कारण मेरी अभिरुचि प्राथमिक अध्ययन के समय से ही देववाणी संस्कृत में हुई ।

मैंने उच्चतर माध्यमिक विद्यालय की परीक्षा सुन्दरबनी से प्राप्त की। तभी मैंने एक विषय संस्कृत का भी लिया। 10+2 की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् गाँधी नगर महाविद्यालय से स्नातक उपाधि प्राप्त की ।

तदोपरान्त उच्चशिक्षा हेतु जम्मू विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग में प्रवेश लिया और प्रथम श्रेणी में संस्कृत स्नातकोत्तर परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त अनुसन्धान कार्य करने की अभिलाषा से मैंने एम. फिल्. में प्रवेश लिया। जब मैंने इस विभाग में प्रवेश लिया तो हमारे विभाग में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक **डॉ0 जगीर सिंह जी** के स्वभाव से मैं तभी से अत्यधिक प्रभावित रही । मैंने अपने निर्देशक डॉ0 जगीर सिंह को पहले से ही अवगत करवा दिया कि मैं 'योग' पर शोध करना चाहती हूँ। मेरी रुचि को देखकर उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। उनके परामर्श और उनके सुझाव और प्रेरणापूर्वक शब्दों से **"शाण्डिल्योपनिषद् और योग"** लघु शोध प्रबन्ध का विषय चयन किया ।

इस लघु शोध प्रबन्ध को मैंने पाँच अध्यायों में विभाजित किया है :-

प्रथम अध्याय में शाण्डिल्य ऋषि, उपनिषद् परिचय, योग और ब्रह्म के स्वरूप का विस्तृत रूप से वर्णन किया है ।

द्वितीय अध्याय में योग से अभिप्राय और योग की आवश्यकता, योग के अंग और प्रकार का वर्णन किया है ।

आसन प्रक्रिया तथा रोग-उपचार नामक तृतीय अध्याय में शाण्डिल्य ऋषि द्वारा

वर्णित आठ आसनों का विस्तृत विवेचन किया है।

चतुर्थ अध्याय में नाड़ियाँ, उन की शुद्धि, संख्या एवं उन में वायु संख्या, स्थान और शरीर में कार्यों का वर्णन है।

पञ्चम अध्याय में आधुनिक युग में योग एवं योगासनों की उपयोगिता की जानकारी दी है ।

सर्वप्रथम जगत्पिता परमेश्वर को मेरा कोटि-कोटि प्रणाम जिनकी कृपादृष्टि से मेरा यह लघु शोध-कार्य सम्पूर्ण हुआ ।

इस लघु शोधकार्य को पूर्ण करने का सर्वाधिक श्रेय महानुभाव **डॉ0 जगीर सिंह जी** को जाता है, जिन्होंने इस शोधकार्य को पूर्ण करने में मेरी समय-समय पर सहायता की तथा अपने ज्ञानपूर्ण निर्देशन से शोधकार्य में आने वाली कठिनाईयों को दूर किया तथा मुझे प्रेरणा देकर इस शोध-कार्य को चरम सीमा तक पहुँचाने में मेरी सहायता की।

मैं अपने विभाग की अध्यक्षा **डॉ0 रमणिका जलाली** तथा अन्य प्राध्यापकों का हार्दिक धन्यवाद करती हुं, जिन्होंने मुझे सम्पूर्ण सहयोग दिया ।

मैं अपनी कक्षा के शोध-छात्रों के साथ-साथ **पं0 तीर्थराम शास्त्री** तथा **पं0 नरेश शास्त्री** का भी हार्दिक धन्यवाद करती हुं, जिन्होंने इस शोध कार्य को पूर्ण करने में मेरी सहायता की है।

संस्कृत विभाग के पुस्तकालयाध्यक्षा **श्रीमति विजय कौल** तथा **जतिन शर्मा** का भी धन्यवाद करती हुँ, जिन्होंने मुझे सामग्री-संकलन में सहायता की है।

मैं रघुनाथ पुस्तकालय के अध्यक्ष **डॉ0 धनी राम शास्त्री** एवं बलदेव राज का भी धन्यवाद करती हूँ, जिन्होंने मुझे अपने पुस्तकालय से सामग्री संकलन में सहायता

की है।

मैं अपने **माता-पिता तथा भाई-बहनों** के प्रति अभार प्रकट करती हूँ जिनके आशीर्वाद तथा प्रेम से ही मेरा एम. फिल्. का शोधकार्य सम्पूर्ण हो पाया ।

मैं अपनी कक्षा के शोध छात्र **पुशविन्दर** तथा **राधेश्याम** के साथ-साथ अपनी प्रिय सहेली **शिशु खजूरिया** की भी अभारी हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष रूप से सौख्यभावरूप में मेरी सहायता की है।

इस लघु शोध प्रबन्ध के सुन्दर टंकण के लिए मैं **श्री अशोक कुमार रैणा** को भी धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने सुन्दर टंकणकर शोध प्रबन्ध को सुन्दर रूप प्रदान किया।

अन्त में मैं पुनः उस ईश्वर को कोटि-कोटि प्रणाम करती हुँ और उनकी बहुत आभारी हूँ, जिनकी असीम कृपा और आर्शीवाद से मैं आज इस शोध कार्य को पूर्ण कर रही हुँ ।

शोधछात्रा

रामो देवी

तिथि : नवम्बर - 2006

रामो देवी

अध्याय - प्रथम

प्रथम अध्याय

क) शाण्डिल्य ऋषि

ख) उपनिषद् परिचय एवं संख्या

ग) योग और ब्रह्म

क) शाण्डिल्य ऋषि -

ब्रह्मा जी ने सृष्टि के आरम्भ में प्रथम मानसपुत्र मरीचि को उत्पन्न किया, तदन्नतर अत्रि को, फिर अंगिरा को तत्पश्चात् पुलस्य को, उस के बाद पुलह को, उस के बाद कृत को, फिर प्रचेता को, उसके बाद वसिष्ठ को, फिर भृगु को, तदन्नतर नारद को उत्पन्न किया, उस का क्रम भी इस प्रकार प्रमाणित है। दाहिने नेत्र से अत्रि को मुख से, अंगिरा को और रूचि को दाहिने पार्श्व से और दक्ष को बाएं पार्श्व से भृगु को स्कन्ध से, मरीचि को गले से, अपान्तर-तमा को जिह्वा से वसिष्ठ को निम्न होठ से प्रचेता को उत्पन्न किया ।

भृगु की पत्नी का नाम ख्याति था, भृगु ने भृगुसंहिता बनाई जो आज भी प्रसिद्ध ग्रंथ माना जाता है, शिव जी की पत्नी सती थी जिन्होंने निज स्वामी की निंदा सुनते ही प्राण त्याग दिए। मरीचि की सम्भूति स्त्री थी, मरीचि ने भी धर्मशास्त्रों की रचना की । अंगिरा की पत्नी का नाम स्मृति था, अंगिरा ने अंगिरा संहिता बनाई। पुलस्य की प्रीति स्त्री थी, पुलह की पत्नी का नाम कीलमा, कश्तु की पत्नी सन्तति, अत्रि की पत्नी का नाम अनुसूइया था, अत्रि ने अत्रि संहिता नामक ग्रंथ की रचना की। वसिष्ठ की ऊर्जा व अरून्धती नामक दो पत्नियाँ थी, अग्नि की स्वाहा स्त्री थी, पितर की स्वधा नामक पत्नी थी ।

मरीचि के पुत्र कश्चप की अदिति, दिति केन्दु विनिता नामक पत्नियाँ थीं, इनके पुत्र काश्यप हुए जिस से उनके अग्रिम वंशज अनुयामी काश्यप कहलाए, काश्यप के वत्सार व असित नामक दो पुत्र हुए, वत्सार के नैध्रुव व रैम्य दो पुत्र हुए। असित का हिमालय की पुत्री एकपर्णा से विवाह हुआ, नैध्रुव की पत्नी सुमेधा थी, जो च्यवन की पुत्री थी । असित के देवल व शाण्डिल्य नामक दो पुत्र हुए, शाण्डिल्य ने अथर्ववेदोपनिषद् की रचना की, परन्तु स्वयं सामवेद ग्रहण किया, इसलिए शाण्डिल्य गोत्रीय सामदेवी माने जाते हैं।

लिंग पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा का पुत्र रूचि हुआ, ब्रह्मा खण्ड के अनुसार रूचि के पुत्र शाण्डिल्य हुए, कृपण खण्ड में लिखा है कि असित प्रचेता का पुत्र था। इसी प्रकार मत्स्यपुराण में अत्युष्टकर पुत्र देवल था। इन पुराणों में इस प्रकार वर्णित मिलता है, यद्यपि सब पुराणों के लेखों में भिन्नता अवश्य है तथापि यह सिद्ध होता है कि यह ऋषिवंश एक ही वृक्ष की अलग-अलग शाखायें हैं। इन सभी के नाम से गोत्रप्रवर विख्यात हुए। पुराणों में भिन्न-भिन्न मतभेद होने पर भी यही सिद्ध होता है कि मनु-अत्रि विष्णुवृद्धि, याज्ञवल्क्य, शुक्र, अंगिरा, अंगिरस, आपस्ताव, समर्त, कात्यान, बृहस्पति, पराशर, गौतम, शान्तामय, वसिष्ठ, हरित प्रचेता, देवल, जगदगनि, नारद, बोधायन, च्यवन, मरीचि, कश्चप शाण्डिल्य आदि सभी ऋषि वंश के प्रमुख गोत्रकर्ता अथवा प्रवरों में माने जाते हैं।

शाण्डिल्य गोत्र के प्रवर्तक शाण्डिल्य ऋषि की वंशोत्पत्ति का वर्णन इस प्रकार है। इन्हीं शाण्डिल्य ऋषि के अग्रिम वंशज शाण्डिल्य गोत्रीय कहलाए ।

ब्रह्मा जी के पुत्र मरीचि, मरीचि के कश्यप के यज्ञ करने से अग्निकुण्ड से शाण्डिल्य ऋषि हुए। इनसे शाण्डिल्य गोत्र चला, अग्नि का नाम हुताशन भी है और अग्नि का गोत्र शाण्डिल्य कहा जाता है। शाण्डिल्य वंश में एक पुरुष महाप्रतापी

हुताशन हुआ, हुताशन के वंश में बहुत काल पीछे मनोरथ तिवारी हुए, इन्होंने बुन्देलखण्ड के राजा को पुत्रेष्टि यज्ञ कराया, इन राजा का नाम अमरसिंह था और राजपुराहित का नाम विश्वनाथ था। विश्वनाथ ने मनोरथ तिवारी को अपनी कन्या ब्याह दी, पीछे दतिया, उडैसा और मदावर को राजाओं ने इनको बुलाया, और तीनों शिष्य हुए, कुछ काल पीछे हमीरपुर के राजपुराहित गंगाराम की कन्या से दूसरा विवाह किया और उस समय से वह तिवारी से मिश्र कहलाये, इनकी निवास भूमि धतुरा थी, इस कारण ये धतुरा के मित्र कहलाये। इनकी पहली स्त्री से कमलनाभि पुत्र हुए, वह माता समेत मऊग्राम में रहे इससे मऊ के मिश्र कहलाये। दूसरी पत्नी से पद्मनाभ व देवनाभ दो पुत्र हुए। यह हमीरपुर के कहलाये, पद्मनाभ के पुत्र हरिहर हमीरपुर के उपाध्याय कहलाये। देवनाभ के पुत्र शारंगधर हमीरपुर के मिश्र कहलाये। हरिहर के गंगाराम, वंशधर, जगन्नाथ यह तीन हमीरपुर के उपाध्याय मिश्र कहलाये। शारंगधर के त्रिपुर और गदाधर दो पुत्र हुए, त्रिपुर कपिला के मिश्र कहलाये। त्रिपुर के बाबू खेमकरण और हेमनाथ तीन पुत्र हुए, बाबू खानीपुर के मिश्र। खेमकरण भोजपुर के मिश्र। हेमनाथ हमीरपुर के मिश्र कहलाये। गदाधर के गंगाधर और श्री हर्ष यह दो पुत्र हुए, गंगाधर भोजपुर में रहे, और वहां के दीक्षित कहलाये। श्रीहर्ष खानीपुर में रहने से वहां के मिश्र कहलाये, खेमकरण के पुत्र दारौअसनी में रहने से असनी के शुक्ल कहलाये। गंगाधर की एक पत्नी से बाबू, बलरामा, वीरेश्वर और उमादत्त यह चार पुत्र हुए, बाबू और बलराम अंठेर में रहने से वहां के दीक्षित कहलाये। वीरेश्वर और उमादत्त वटपुर में रहने से अपने नाम से दीक्षित कहलाये। गंगाराम की दूसरी पत्नी घेतली से गोपी और हंसराम दो पुत्र हुए, गोपी अपनी माता के सहित नौ गांव में बसे, इससे वहां के मिश्र कहलाये, हंसराम अंटेरी में रहे और दीक्षित कहलाये। श्रीहर्ष के परशु, हिमकर, ललकर और गोपीनाथ यह पुत्र हुए, परशु, खानीपुर के

मिश्र। हिमकर भटेउरा के मिश्र। ललकर और गोपीनाथ असनी के मिश्र कहलाये। बाबू के विद्याधर बनवारी और रघुनंदन यह तीन पुत्र हुए और अंटेरी में रहने से अंटेर के दीक्षित कहलाये। बलिराम के कुंगबू समाधान, वासी और चतुरी नामक चार पुत्र हुए, कुगू वटपुर में रहने से वहां की दीक्षित कहलाये। शुगु तीनो अंटेर में रहने से वहां के दीक्षित कहलाये। क्रम से वीरेश्वर के मुरली, गिरिधारी, नित्यानन्द, शिरामणि, जगजीवन यह पाँच पुत्र हुए यह सब वटरपुर में रहे, और वीरेश्वक दीक्षित कहलाये। जगजीवन के उमादत्त, बुधकेशव, यादव और गोबिन्द यह चार पुत्र हुए और बटपुर में रहकर उमादत्त के दीक्षित कहलाये। परशु के पंद्याणि, कमलपाणि, चक्रपाणि और वंशीधर यह चार पुत्र हुए और चारों खानीपुर वाले परशु के मिश्र कहलाये। हिमकर के शंकर, क्षेमराज जयभद्र तीन पुत्र हुए, शंकर ने भटोउरा में निवास किया। क्षेमराज ने असनी में निवास किया। जयभद्र ने गंगासों में निवास किया। यह तीनों हिमकरक मिश्र कहलाये, गोपीनाथ के मथुरानाथ, प्रभाकर, श्रीधर तीन पुत्र हुए। यह तीनों कन्नौज में बसे, मथुरानाथ प्रभाकर, गोपीनाथी कन्नौज के मिश्र कहाये। श्रीधर गोपीनाथी धोबिया मिश्र कहलाये। कुंगबू के श्रद्धा, पुरुषोत्तम, माधवराम, भट्टचार्य ये चार पुत्र हुए, यह चार वटेश्वर में रहे और कुगू के दीक्षित कहलाये। समाधानक चार पुत्र हुए, उनके नाम इन्द्र मुकुन्द, आगे और बदले हुए, यह चार वटपुर में समाधानक दीक्षित कहलाये, मुरली के लच्छू बिरजू और मोहन तथा दिवऊ यह चार पुत्र हुए, यह चारों वटरपुर वाले वीरेश्वर के दीक्षित कहलाये। जगजीवन के धर्मू और शर्मू दो पुत्र हुए यह वटरपुर वाले वीरेश्वर के दीक्षित कहलाये। कमलपाणिक, लालमणि, लोकनाथ, विश्वनाथ, चतुर्भुज, यह चारों असनी वाले परशु के मिश्र कहलाये। जयद्रथ के लछनू और बछनू दो पुत्र हुए यह दोनों गंगासों वाले हिमकर के मिश्र कहाये। प्रभाकर के श्रीकुठ और माधव यह दो पुत्र हुए और गोपालपुर में बसे गोपीनाथी मिश्र कहलाये।

श्रीधर के एक पुत्र चतुर्भुज हुए, यह असनी के गोपीनाथी धोबिया मिश्र कहलाये। श्रद्धा के चक्रपाणि, शेखर और श्रीचन्द यह तीन पुत्र हुए, यह वटरपुर में रहे और कुगू के दीक्षित कहलाये। इनमें चक्रपाणि और शेखर के और श्री चन्दक हैं। धर्म के पुत्र जयकृष्ण वटरपुर वाले वीरेश्वर के दीक्षित कहलाये। चतुर्भुज के शुक्ले, मुन्ने, बुद्धा और दीप यह चार पुत्र हुए, यह चारों पुत्र मीरा की सरायवाले परशु के मिश्र कहलाये। श्रीकंठ के प्राणनाथ, केशवराम, हरिनन्दन यह तीन पुत्र हुए। मोजावाद के गोपीनाथी मिश्र कहलाये। जयकृष्ण के यज्ञपति, गृहपति, धीरेश्वर, यज्ञदत क्षेमकरण यह पांच वटपुर वाले वीरेश्वर के दीक्षित कहलाये। शुक्ले के ग्राम और प्राथम यह दो पुत्र हुए, यह दोनों मीरा की सराय वाले परशु के मिश्र रामपुरी कहलाये। प्राणनाथ के गदापर और लक्ष्मण यह दो पुत्र हुए, और खानीपुर के मिश्र कहलाये। क्षेमकरण के रूपनारायण, सूर्यमणि और दीनानाथ यह तीन पुत्र हुए और वटरपुर वाले वीरेश्वर के दीक्षित कहलाये। दीनानाथ के गोकुल, आदि-आदि । इस गोत्र में १७ पीढ़ी में ३० पुरुष वंशकर्ता हुए।

ब्रह्मा
↓
मरीचि
↓
कश्यप

वत्सार ——— असित

वत्सार → नैध्रुव, रैम्य

असित → देवल, शाण्डिल्य

शाण्डिल्य → हुताशन → तिवारी → कमलनाभि

कमलनाभि → पद्मनाभ ——— देवभाभ

पद्मनाभ → हरिहर → गंगाधर, वंशधर

वंशधर → जगन्नाथ

देवभाभ → शारंगधर → त्रिपुर, गदाधर

त्रिपुर → बाबू, खेमकरण, हेमनाथ

गदाधर → गंगाधर, श्रीहर्ष

(1पत्नी से) (2 पत्नी से)

गंगाधर → बाबू, वलरामा, वीरेश्वर गोपी,हसराम

बाबू → विद्याधर,बनवारी,रघुनंदन

वलरामा → कुंगबू, समाधान, वासी, चतुरी

कुंगबू → (4पुत्र) समाधान → (4पुत्र)

1 पुत्र श्रद्धा के
(3 पुत्र)
धर्म का पुत्र
↓
जयकृष्ण
↓
(5 पुत्र) 1 का नाम क्षेमकरण
↓
(1 2 दीनायपुत्र)→ <u>गोकुलादि-आदि इस गोत्र में 17 पीढ़ी में 30 वंशकर्ता हुए।</u>

वीरेश्वर → मुरली, गिरिधारी, नित्यानन्द, शिरोमणि, जगजीवन

मुरली → (4पुत्र)

जगजीवन → उमादत्त,बुधकेशव,यादव,गोबिन्द,शर्मू,धर्मू

श्रीहर्ष → परशु, हिमकर, ललकर, गोपीनाथ

परशु → पद्मपाणि,कमल,चक्रावंशीधर

हिमकर → शंकर,क्षेमराज जयभद्र (2पुत्र)

गोपीनाथ → मधूरानाथ, प्रभाकर, श्रीधर

प्रभाकर → (2 पुत्र) → (1 पुत्र का नाम श्रीकंठ → (3 पुत्र) → प्राणनाथ,केशवराम,हरिनन्दन

प्राणनाथ → (2 पुत्र)

श्रीधर → चतुर्भुज (1 पुत्र) → (4 पुत्र) → (1 का नाम शुक्ल → (2 पुत्र)

ख) उपनिषद् परिचय -

वैदिक शिक्षाओं का साररूप उपनिषदें मानी जाती हैं। इनकी नींव के ऊपर ही बहुत से भारतीय अर्वाचीन दर्शनशाखाओं और धार्मिक सम्प्रदायों के भवन खड़े हैं। उपनिषद् वस्तुतः वह आध्यात्मिक ज्ञान का मानसरोवर है, जिससे ज्ञान की भिन्न-भिन्न नदियाँ निकलकर इस पुण्य स्थल में मानवमात्र के कल्याण और मंगल की कामना से बहती हैं।

उपनिषदों में आत्मा तथा परमात्मा के सम्बन्ध पर विचार किया गया है कि आत्मा परमात्मा का अंश है, जैसे - अग्नि-कण अग्नि के अंश हैं। उपनिषदों के ऋषियों ने सबसे पहली बार समस्त ब्रह्माण्ड तथा इसमें निवास करने वाले असंख्य जीव-जन्तुओं पर व्यापक रूप से विचार करना प्रारम्भ किया। उपनिषदीय ऋषियों द्वारा निकाले गए निष्कर्ष आज तक अकाट्य हैं। उपनिषदों में प्रतिपादित सिद्धान्तों का सार्वकालिक तथा सार्वदेशिक महत्त्व है।

उपनिषदों का आदर्शवाद आज भी मानव के मस्तिष्क को प्रेरणा देने में उतना ही समर्थ है, जितना कि प्राचीन समय में था। यह समस्त दर्शनों का मूलग्रन्थ है और जैन और बौद्ध दर्शनों की आधारशिला भी है। इनके अध्ययन से भारतीय संस्कृति के आध्यात्मिक रूप का सच्चा परिचय हमें मिलता है। भारतीय संस्कृति से इसका अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

उपनिषद् से तात्पर्य -

आत्मा-परमात्मा के ज्ञान-विषयक मुख्य रूप से प्रतिपादित शास्त्र 'उपनिषद्' कहे जाते हैं। "उपनिषद्" शब्द विषयक विभिन्न मत इस प्रकार माने जाते हैं -

व्याकरणपरक मत :-

उपनिषद् शब्द की व्युत्पत्ति 'उप' और 'नि' उपसर्गपूर्वक षद्लृ 'सद्' धातु से क्विप् प्रत्यय का योग करने से निष्पन्न होती है। षद्लृ धातु तीन अर्थों से प्रयुक्त होती है - (1) विशरण या शिथिल करना (2) गति अर्थात् ज्ञान प्राप्त करना (3) अवसादन नाश करना

उपनिषद् शब्द स्त्रीलिंग है - उप और निषद् के मेल से बना है। 'उप' का अर्थ समीप अर्थात् निकट है और 'निषद्' का अर्थ बैठनेवाला है। इस तरह जो परम तत्त्व (ब्रह्म) के समीप पहुँचाकर बैठनेवाला ज्ञान है, उसे उपनिषद् कहते हैं। 'समीप पहुँचाने' का अर्थ है ब्रह्म में विलीन करना और 'बैठनेवाला' का अभिप्राय है सदा स्थिर रहने वाला। तात्पर्य यह है कि आत्मा को ब्रह्म-रूप से प्रतिष्ठित करने वाले स्थिर ज्ञान को 'उपनिषद्' कहा जाता है ।

वेदपरक मत :-

वेदों के अन्तिम भाग को वेदान्त अथवा उपनिषद् कहा जाता है। 'रहस्य' भी उपनिषद् शब्द का पर्यायवाची शब्द है क्योंकि उपनिषदों में 'इति रहस्यम्' और 'इति गुह्यम्' शब्द अनेक स्थलों पर मिलता है वस्तुतः उपनिषदों में ब्रह्म, जीवन और जगत् आदि का वर्णन नितान्त रहस्यमय है। उपनिषदों का प्रमुख विषय ब्रह्म का वर्णन करना है। इसलिए इसका नाम 'ब्रह्मविद्या' भी है। 'ब्रह्मविद्या' ही उपनिषद् का मुख्यार्थ है। उपनिषद् का अर्थ विद्या भी है, वह विद्या जो ब्रह्म के समीप ले जाने वाली है।

वेदान्तपरक अर्थ :-

वेद शब्द विद् (ज्ञान) धातु से निष्पन्न होने वाले 'ज्ञान' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। वेद चार हैं - ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद और प्रत्येक वेद के

चार-चार भाग हैं - मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। वेदों के अन्तिम भाग को वेदान्त या उपनिषद् कहा गया है। वेदों का यह भाग ज्ञानपरक है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञों से सम्बन्धित अर्थात् केवल वेदों की कर्मकाण्ड सम्बन्धी व्याख्या उपलब्ध होती है। उपनिषदों में ऋषियों ने ज्ञानकाण्ड को अधिक महत्त्व दिया है। उन्होंने चिन्तन-मनन और अपनी प्रतिभा के बल पर आत्मसाक्षात्कार किया है।

बृहद् बैदिक साहित्य में आरण्यक ग्रन्थों के पश्चात् उपनिषद् ग्रन्थों का क्रम आता है उपनिषद् ग्रन्थों में आत्मज्ञान, मोक्षज्ञान और ब्रह्मज्ञान की प्रधानता होने के कारण उनको आत्मविद्या भी कहा जाता है ।

दार्शनिक मत :-

दार्शनिक मत के अनुसार उप+वास और उप+निषद् का एक ही अध्यात्मपरक अर्थ निकलता है। उपनिषदें आत्मा परमात्मा के समीप बैठाने अर्थात् ज्ञान कराने का माध्यम है। कठोपनिषद् में भी कहा गया है कि प्रायः अज्ञानी जीव अपनी आत्मा का अनुभव नहीं करते। इसलिए संसार चक्र में पड़े रहते हैं। अतः मोक्ष अथवा परमानन्द प्राप्ति के लिए आत्मा के समीप (उप) बैठना (निषद्) चाहिए ।

'षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु' धातु के पहले 'उप' और 'नि' ये दो उपसर्ग और अन्त में 'क्विप्' प्रत्यय लगाने से उपनिषद् शब्द बनता है ।

जिससे ब्रह्म का साक्षात्कार किया जा सके वह उपनिषद् कहलाती है। [1] उपनिषदों में ब्रह्म ज्ञान अथवा ब्रह्मविद्या का ही प्रधानता से विवेचन तथा वर्णन किया हुआ है, जिससे उपनिषद् को 'अध्यात्मविद्या' भी कहते है।। ब्रह्म के प्रतिपादक वेद के शिरोभाग अथवा अन्त में होने से ये 'वेदान्त' या 'उत्तरमीमांसा' भी कही जाती है। ब्रह्मज्ञान, आत्मज्ञान, तत्त्वज्ञान और ब्रह्मविद्या - ये सब पर्यायवाची शब्द हैं । वेद के

---

1. उपनिषद्यते - प्राप्यते ब्रह्मत्मभावोऽनयचा इति उपनिषद् ।

अङ्गभूत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक में से ही ब्रह्मज्ञान प्रतिपादक भागों को प्रथक् कर उनको 'उपनिषद्' नाम दिया गया है। अमरकोषकारों के अनुसार 'उपनिषद्' शब्द गूढ़ धर्म एवं रहस्य के अर्थ में प्रयुक्त होता है ।[1]

उपनिषदों की संख्या -

उपनिषदों की बड़ी महिमा है। वैदिक वाङ्मय का शीर्षस्थान उपनिषद् है - इस कथनमात्र से ही उपनिषदों की लोकोत्तर महत्ता स्पष्ट हो जाती है। प्राचीनकाल में औपनिषद् ज्ञान का बड़ा महत्त्व था। ऊँचे-से-ऊँचे अधिकारी ही इस विद्या में पारंगत होते थे । वैदिक काल से उपनिषदों के स्वाध्याय की परम्परा प्रचलित हुई । अतः कुछ उपनिषद् तो वेद के ही अंश विशेष हैं कुछ ब्राह्मभाग और आरण्यकों के अन्तर्गत हैं। कुछ इनकी अपेक्षा अर्वाचीन होने पर भी आज से बहुत प्राचीन काल के हैं। उपनिषद्-ग्रन्थ प्राचीन हों या अर्वाचीन - सभी ज्ञानप्रधान हैं। सबका आविर्भाव किसी-न-किसी गूढ़ तत्त्व या रहस्य का प्रकाशन करने के लिए ही हुआ है। अतः इनके स्वाध्याय से ज्ञान की वृद्धि ही होती है। मुक्तिकोपनिषद् में से एक सौ आठ उपनिषदों के नाम आते हैं। इसके अतिरिक्त मद्रास 'अडियार लाइब्रेरी' से भी उपनिषदों का एक संग्रह प्रकाशित हुआ है, जो अनेक भागों से विभक्त है। उसमें लगभग २७९ उपनिषदों का प्रकाशन हो गया है। इन सब पर दृष्टिपात करने से यह निश्चित होता है कि अब तक लगभग २२० उपनिषदें प्रकाश में आ चुकी हैं और भी प्रकाशित हुई होंगी तथा कितनी ही अब भी अप्रकाशित रूप में उपलब्ध हो सकती हैं। प्राचीन काल से ही अद्वितीय ज्ञान-विज्ञानशाली भारतवर्ष में ज्ञान-विज्ञान की अपरिमित ग्रन्थराशि का होना आश्चर्य की बात नहीं है। भारत पर एक-एक करके अनेक बार

---

1. 'धर्मे रहस्युपनिषत स्यात्'

विदेशी दस्युओं के आक्रमण हुए और अनेक द्वारा हमारी प्राचीन हस्तलिखित कितनी ही पुस्तकों तथा पुस्तकालयों को भस्मावशेष कर दिया गया। इतने पर भी जो कुछ शेष है, उसका भी यदि भारतीय जन आदरपूर्वक अनुशीलन करें तो पूर्वजों की ज्ञान-ज्योति अब भी इस देश में प्रकाशित हो सकती है। यहाँ २२० उपनिषदों की नामावली अकारादि क्रम से दी जा रही है -

1. अक्षमालोपनिषद्
2. अक्षि-उपनिषद्
3. अथर्वशिखोपनिषद्
4. अथर्वशिर उपनिषद्
5. अद्वयतारकोपनिषद्
6. अद्वैतोपनिषद्
7. अद्वैतभावनोपनिषद्
8. अध्यात्मोपनिषद्
9. अनुभवसारोपनिषद्
10. अन्नपूर्णोपनिषद्
11. अमनस्कोपनिषद्
12. अमृतनादोपनिषद्
13. अमृतबिन्दूपनिषद् (ब्रह्मबिन्दूपनिषद्)
14. अरुणोपनिषद्
15. अल्लोपनिषद्
16. अवधूतोपनिषद् (वाक्यात्मक एवं पद्यात्मक)
17. अवधूतोपनिषद् (पद्यात्मक)

18. अव्यक्तोपनिषद्

19. आचमनोपनिषद्

20. आत्मपूजोपनिषद

21. आत्मप्रबोधोपनिषद् (आत्मबोधोपनिषद्)

22. आत्मोपनिषद् (वाक्यात्मक)

23. आत्मोपनिषद् (पद्यात्मक)

24. आथर्वणद्वितीयोपनिषद् (वाक्यात्मक एवं मन्त्रात्मक)

25. आयुर्वेदोपनिषद्

26. आरुणिकोपनिषद् (आरुणेय्युपनिषद्)

27. आर्षेयोपनिषद्

28. आश्रमोपनिषद्

29. इतिहासोपनिषद् (वाक्यात्मक एवं पद्यात्मक)

30. ईशावास्योपनिषद् उपनिषस्तुति (शिवरहस्यान्तर्गत, अभी तक अनुपलब्ध)

31. ऊर्ध्वपुण्डोपनिषद् (वाक्यात्मक एवं पद्यात्मक)

32. एकाक्षरोपनिषद्

33. ऐतरेयोपनिषद् (अध्यायात्मक)

34. ऐतरेयोपनिषद् (खण्डात्मक)

35. ऐतरेयोपनिषद् (अध्यायात्मक)

36. कठरुद्रोपनिषद् (कण्डोपनिषद्)

37. कठोपनिषद्

38. कठश्रुत्युपनिषद्

39. कलिसतरणोपनिषद्(हरिनामोपनिषद्)

40. कात्यायनोपनिषद्

41. कामराजकीलितोद्धारोपनिषद्

42. कालाग्निरुद्रोपनिषद्

43. कालिकोपनिषद्

44. कालीमेधादीक्षितोपनिषद्

45. कुण्डिकोपनिषद्

46. कृष्णोपनिषद्

47. केनोपनिषद्

48. कैवल्योपनिषद्

49. कौलोपनिषद्

50. कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद्

51. क्षुरिकोपनिषद्

52. गणपत्यथर्वशीर्षोपनिषद्

53. गणेशपूर्वतापिन्युपनिषद् (वरदपूर्वतापिन्युपनिषद्)

54. गणेशोत्तरतापिन्युपनिषद् (वरदोत्तरतापिन्युपनिषद्)

55. गर्भोपनिषद्

56. गान्धर्वोपनिषद्

57. गायत्र्युपनिषद्

58. गायत्रीरहस्योपनिषद्

59. गारुडोपनिषद् (वाक्यात्मक एवं मंत्रात्मक)

60. गुह्यकाल्युपनिषद्

61. गुह्यषोढान्यासोपनिषद्

62. गोपालपूर्वतापिन्युपनिषद्

63. गोपालोत्तरतापिन्युपनिषद्

64. गोपीचन्दनोपनिषद्

65. चतुर्वेदोपनिषद्

66. चाक्षुषोपनिषद् (चक्षुरुपनिषद्, चक्षूरोगोपनिषद्, नेत्रोपनिषद्)

67. चित्त्युपनिषद्

68. छागलेयोपनिषद्

69. छान्दोग्योपनिषद्

70. जाबालदर्शनोपनिषद्

71. जाबालोपनिषद्

72. जाबाल्युपनिषद्

73. तारसारोपनिषद्

74. तारोपनिषद्

75. तुरीयातीतोपनिषद् (तीताबधूतो0)

76. तुरीयोपनिषद्

77. तुलस्युपनिषद्

78. तेजोबिन्दूपनिषद्

79. तैत्तिरीयोपनिषद्

80. त्रिपाद्विभूतिमहानारायणोपनिषद्

81. त्रिपुरातापिन्युपनिषद्

82. त्रिपुरोपनिषद्

83. त्रिपुरामहोपनिषद्

84. त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद्

85. त्रिसुपर्णोपनिषद्

86. दक्षिणामूर्त्युपनिषद्

87. दत्तात्रेयोपनिषद्

88. दत्तोपनिषद्

89. दुर्वासोपनिषद्

90. (1) देव्युपनिषद् (पद्यात्मक एवं मन्त्रात्मक)

(2) देव्युपनिषद् (शिवरहस्यान्तर्गत अनुपलब्ध)

91. द्वयोपनिषद्

92. ध्यानबिन्दूपनिषद्

93. नादबिन्दूपनिषद्

94. नारदपरिव्राजकोपनिषद्

95. नारदोपनिषद्

96. नारायणपूर्वतापिन्युपनिषद्

97. नारायणोत्तरतापिन्युपनिषद्

98. नारायणोपनिषद् (नारायणाथर्वशीर्ष)

99. निरालम्बोपनिषद्

100. निरुक्तोपनिषद्

101. निर्वाणोपनिषद्

102. नीलरुद्रोपनिषद्

103. नृसिंहपूर्वतापिन्युपनिषद्

104. नृसिंहषट्चक्रोपनिषद्

105. नृसिंहोत्तरतापिन्युपनिषद्

106. पञ्चब्रह्मोपनिषद्

107. परब्रह्मोपनिषद्

108. परहंसपरिव्राजकोपनिषद्

109. परमहंसोपनिषद्

110. पारमात्मिकोपनिषद्

111. पारायणोपनिषद्

112. पाशुपतब्रह्मोपनिषद्

113. पिण्डोपनिषद्

114. पीताम्बरोपनिषद्

115. पुरुषसूक्तोपनिषद्

116. पैङ्गलोपनिषद्

117. प्रणवोपनिषद् (पद्यात्मक)

118. प्रणवोपनिषद् (वाक्यात्मक)

119. प्रश्नोपनिषद्

120. प्रणाग्निहोत्रोपनिषद्

121. बटुकोपनिषद् (बटुकोपनिषद्)

122. बह्वृचोपनिषद्

123. बाष्कलमन्त्रोपनिषद्

124. विल्वोपनिषद् (पद्यात्मक)

125. विल्वोपनिषद् (वाक्यात्मक)

126. बृहज्जाबालोपनिषद्

127. बृहदारण्यकोपनिषद्

128. ब्रह्मविद्योपनिषद्

129. ब्रह्मोपनिषद्

130. भगवद्गीतोपनिषद्

131. भवसतरणोपनिषद्

132. भस्मजाबालोपनिषद्

133. भावनोपनिषद् (कापिलोपनिषद्)

134. भिक्षुकोपनिषद्

135. मठाम्नायोपनिषद्

136. मण्डलब्राह्मणोपनिषद्

137. मन्त्रिकोपनिषद् (चूलिकोपनिषद्)

138. मल्लायुपनिषद्

139. महानारायणोपनिषद् (बृहन्नाराणोपनिषद्, उत्तरनाराणोपनिषद्)

140. महावाक्योपनिषद्

141. महोपनिषद्

142. माण्डूक्योपनिषत्कारिका

143. माण्डूक्योपनिषद

(क) आगम

(ख) अलातशान्ति

(ग) वैतथ्य

(घ) अद्वैत

144. मुक्तिकोपनिषद्

145. मुण्डकोपनिषद्
146. मुद्गलोपनिषद्
147. मृत्युलाङ्गूलोपनिषद्
148. मैत्रायण्युपनिषद्
149. मैत्रेय्युपनिषद्
150. यज्ञोपवीतोपनिषद्
151. याज्ञवल्क्योपनिषद्
152. योगकुण्डल्युपनिषद्
153. योगचूड़ामण्युपनिषद्
154. (1) योगतत्त्वोपनिषद्
155. (2) योगतत्त्वोपनिषद्
156. योगराजोपनिषद्
157. योगोपनिषद्
158. योगोपनिषद्
159. राजश्यामलारहस्योपनिषद्
160. राधिकोपनिषद् (वाक्यात्मक)
161. राधोपनिषद् (प्रपाठात्मक)
162. रामपूर्वतापिन्युपनिषद
163. रामरहस्योपनिषद्
164. रामोत्तरतापिन्युपनिषद्
165. रुद्रहृदयोपनिषद्
166. रुद्राक्षजाबोलोपनिषद्

167. रुद्रोपनिषद्

168. लक्ष्म्युपनिषद्

169. लाङ्गलोपनिषद्

170. लिङ्गोपनिषद्

171. वज्रसूचिकोपनिषद्

172. वज्रसूचिकोपनिषद्

173. वनदुर्गोपनिषद्

174. वराहोपनिषद्

175. वासुदेवोपनिषद्

176. विश्रामोपनिषद्

177. विष्णुहृदयोपनिषदृ

178. शरभापनिषद्

179. शाट्यायनीयोपनिषद्

180. शाण्डिल्योपनिषद्

181. शारीरकोपनिषद्

182. (1) शिवसङ्कल्पोपनिषद्

183. (2) शिवसङ्कल्पोपनिषद्

184. शिवोपनिषद्

185. शुकरहस्योपनिषद्

186. शौनकोपनिषद्

187. श्यामोपनिषद्

188. श्रीकृष्णपुरुषोत्तमसिद्धान्तोपनिषद्

189. श्रीचक्रोपनिषद्

190. श्रीविद्यातारकोपनिषद्

191. श्रीसूक्तम्

192. श्वेताश्वतरोपनिषद्

193. षोढोपनिषद्

194. सङ्कर्षणोपनिषद्

195. सदानन्दोपनिषद्

196. सन्ध्योपनिषद्

197. सन्यासोपनिषद् (अध्यायात्मक)

198. सन्यासोपनिषद् (वाक्यात्मक)

199. सरस्वतीरहस्योपनिषद्

200. सर्वोपनिषद्

201. स ह वै उपनिषद्

202. सहितोपनिषद्

203. सामरहस्योपनिषद्

204. साविव्युपनिषद्

205. सिद्धान्तविध्लोपनिषद्

206. सिद्धान्तशिखोपनिषद्

207. सिद्धान्तसारोपनिषद्

208. सीतोपनिषद्

209. सुदर्शनोपनिषद्

210. सुबालोपनिषद्

211. सुमुख्युपनिषद्

212. सूर्यतापिन्युपनिषद्

213. सूर्योपनिषद्

214. सौभाग्यलक्ष्म्युपनिषद्

215. स्कन्दोपनिषद्

216. स्वसंवेद्योपनिषद्

217. हयग्रीवोपनिषद्

218. हसषोढोपनिषद्

219. हंसोपनिषद्

220. हेरम्बोपनिषद्

उपनिषदों की संख्या के सम्बन्ध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। उपनिषदों की संख्या १०८ से लेकर २२० तक मानी जाती है । इनमें ११ उपनिषदें प्रमुख मानी जाती हैं। उनके नाम हैं - ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक और श्वेताश्वतर । इन प्रमाणिक उपनिषदों पर ही शंकराचार्य ने अपना भाष्य लिखा है। श्री ह्यूम ने जिन प्रमुख १३ उपनिषदों का अंग्रेजी में अनुवाद किया है, उनमें इन ११ के अतिरिक्त कौषीतकि और मैत्रायणीय उपनिषदें हैं।[1] मुक्तिक उपनिषद् में श्वेताश्वतर को छोड़कर शेष १० को ही प्रमुख उपनिषदें माना है ।[2] इन १० उपनिषदों का नाम इस प्रकार है - ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक।[3]

---

1. The Thirteen Principal Upanishads by Robert Ernest Hume
2. दशोपनिषद् पठ (मूक0 उप0 १-२७)
3. ईश-केन-कठ-प्रश्न-मुण्ड, माण्डूक्य-तित्तिर।
   ऐतरेय च छान्दोग्य बृहदारण्यक तथा । (मुक0 उप0 १-३०)

ग) योग और ब्रह्म -

योग का सामान्य अर्थ है - समस्त चित्तवृत्तियों का निरोध करना । मनुष्य अपने सम्पूर्ण बाह्य व्यवहार की सिद्धि के लिए क्षोत्र - त्वक् - चक्षु - रसना - घ्राण इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा वाक् - हस्त - पाद - पायु - उपस्थ इन पाँच कर्मेन्द्रियों का उपयोग करता है। मनुष्य के व्यवहार या आचरण का साधन होने से इन इन्द्रियों को करण भी कहा जाता है। इनका सम्बन्ध शरीर के बाह्य क्रियाकलाप से है, अतः ये बाह्यकरण कहलाते हैं। इसी प्रकार मनुष्य अपने आभ्यन्तरिक व्यवहार या आचरण की सिद्धि के लिए मन बुद्धि, अहंकार इन तीन साधनों का उपयोग करता है। ये तीनों साधन अन्तःकरण कहलाते हैं। इन सभी साधनों में मन प्रमुख है। यही मन सभी बाह्य करणों का नियन्त्रक व प्रेरक है। योगदर्शन में मन को 'चित्त' संज्ञा से व्यवहृत किया गया है, और उस मन के सम्पूर्ण व्यापार को चित्तवृत्ति कहा गया है। इन सम्पूर्ण चित्तवृत्तियों का मन की एकाग्रतापूर्वक निग्रह किया जा सकता है। अर्थात जब मन की एकाग्रता होती है, तब सभी (दसों) इन्द्रियों का सम्पूर्ण व्यापार अवरूद्ध हो जाता है। यही 'चित्तवृत्ति निरोध' कहलाता है। इसी का नाम 'योग है जब मन (चित्त) विविध विषयों में अपने प्रवृतिरूप कार्यों का न करते हुए शान्त, व्यवस्थित, निश्चल और एकाग्र स्थिति में होता है, उस अवस्था का नाम अथवा ऐसा करने की प्रक्रिया का नाम 'योग' है।

जब मनुष्य की शारीरिक मानसिक और आत्मिक स्थिति असंतुलित या अस्त व्यस्त हो जाती है, तब मनुष्य स्वयं को अशान्त और दुःखी अनुभव करता हुआ चिन्तायुक्त हो जाता है। इस प्रकार मन का अशान्त होना दुःख या रोग का कारण बन जाता है। अतः दुःख और रोगों से 'मन की अशान्ति' के निराकरण का नाम ही

'योग' है। जब मन की अशान्ति का निवारण होता है, तो मन में समस्थिति, समताभाव, साम्यावस्था या व्यवस्थीकरण होता है, इसे ही 'योग' कहा जाता है। गीता में भी समत्वभाव को योग कहा गया है।[1]

चित्त की वृत्तियों के कारण ही संसार में कर्मबन्धन होता है और कर्मबन्धन के कारण प्राणियों के शरीर में स्थित यह जीवात्मा संसार की विभिन्न (84 लाख) योनियों में परिभ्रमित होता हुआ विविध क्लेशों को सहन करता है। मानव चित्त की वृत्तियों के कारण अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पाँच क्लेशों से युक्त हो जाता है चित्तवृत्तियों के निरोध से क्लेशों का नाश हो कर जीवात्मा और परमात्मा का योग होता है।

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार मानवीय प्रकृति (भौतिक तथा आत्मिक) के भिन्न तत्त्वों के नियन्त्रण द्वारा पूर्णता प्राप्ति के लिए किया गया विधिपूर्वक प्रयत्न ही 'योग' है।

संसार के समस्त शुभाशुभ कर्मों में प्रवृत्ति का मूल कारण मन है। मनुष्य का मन स्वभावतः चञ्चल होता है। मन की चञ्चलता के कारण ही बड़े-बड़े दृढ़ वृत्तियों, महातपस्वियों, योगियों और सन्यासियों को अपने ब्रत, तप, साधना, योग आदि में भ्रष्ट होते हुए देखा गया है अर्थात् जो मन को वश में कर लेता है, वही अपनी साधना में पूर्णता प्राप्त कर लक्ष्य-सिद्धि में सफल होता है । 'योग' शब्द की व्युत्पत्ति कई प्रकार से अर्थात् भिन्नार्थ में प्रतिपादित की गई है। परन्तु सब का अर्थ समान भाव से मिलता है -जोड़ना, मिलाना, समभाव, समस्थिति समताभाव व्यवस्थीकरण इत्यादि। महाभारत में योग शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में हुआ है, किन्तु वे सब जिस धातु से निष्पन्न हुए हैं उस का अर्थ 'जोड़ना' या 'मिलाना'। कठोपनिषद् में योग शब्द का

---

1. सिद्धयसिद्धयोः समोभूत्वा समत्वं योग उच्यते ।। (भग0 गी0 २/४७)

प्रयोग "इन्द्रियों" को वश में करना के अर्थ में हुआ है।[1] गीता में भी यद्यपि योग शब्द का प्रयोग भिन्न अर्थों में हुआ है तथापि उन सबका सम्बन्ध जोड़ना अर्थ से ही हुआ है। मनु ने योग शब्द का अर्थ "वश में करना" किया जो सम्भवतः "युज् संयमने" धातु से सम्बन्धित है। पाली भाषा में भी योग शब्द का प्रयोग 'जोड़ना', वश में करना या प्रत्यन करना के अर्थ में किया गया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि 'योग' के विभिन्न अर्थ होने पर भी उस का एक ही भाव सिद्ध होता है कि योग द्वारा मनुष्य परब्रह्म को प्राप्त कर परमात्म तत्त्व में मिल जाता है।

<u>ब्रह्म</u> -

ब्रह्म सत्य, विज्ञान और अनन्त स्वरूप है, जिस से सारा जगत् ओत-प्रोत है। उसी से यह सारा संसार उत्पन्न होता है और पुनः उसी में विलीन (अस्त) हो जाता है। वह हाथ-पैर रहित, चक्षु रहित, कान रहित, जीभ रहित, शरीर रहित, ग्रहण न कर सकने योग्य और बताये न जा सकने योग्य है। उसे केवल ज्ञान से प्राप्त किया जा सकता है। वह अद्वितीय है, आकाश के समान सर्वव्यापी, अत्यन्त सूक्ष्म, निरञ्जन निष्क्रिय, मात्र सत्य स्वरूप, चैतन्य और आनन्दरूप, एक रस वाला, मंगलमय, अति शान्त और अमर है। वह परब्रह्म है। वह सर्वज्ञ, सर्वेश्वर सब प्राणियों का अन्तरात्मा, सभी प्राणियों में निवासकर्ता, भूतों में गुप्त, भूतों का मूल उत्पत्ति स्थान, वही परब्रह्म है। वही विश्व की सृष्टि करता है, विश्व की रक्षा करता है, विश्व का संहार करता है। वही आत्मा है। अर्थात् तीनों काल (भूत, वर्तमान, भविष्य)उसी ब्रह्म द्वारा नियन्त्रित

---

1. स्थिराम इन्द्रियधारणाम् योगं उच्चते । (कठो0उप0 अ0 २/११)
योगो ही प्रभवात्यषौ।।

होते हैं। वही ब्रह्म, विष्णु और महेशरूप है।[1]

परब्रह्म क्रियारहित और अक्षर है तो भी इस परब्रह्म के तीन स्वरूप हैं - सकल, निष्कल और सकल-निष्कल । जो सत्य, विज्ञान, आनन्द, क्रियाशून्य, निरञ्जन, सर्वव्यापी, अत्यन्त सूक्ष्म, सब ओर मुख वाला, बता सकने में असम्भव और अमर है, वह निष्कल रूप है। इस परब्रह्म की जो सहज अविद्या मूल प्रकृति और माया है, वह लाल, श्वेत और काली है उस (माया) की सहायता से यह देव समस्त सृष्टि का नियन्ता होता है। यह इसका 'सकल-निष्कल' रूप है । यही परब्रह्म अनेक रूपों में व्याप्त है। यही सब प्राणियों के हृदय में रहने वाला है। वही ब्रह्म, विष्णु, रुद्र, इन्द्र और समस्त देव, समस्त भूतों के रूप में विद्यमान होता है। वही आगे, पीछे, उत्तर, दक्षिण, नीचे-ऊपर सब जगह व्याप्त है वही अपनी इच्छानुसार नाना रूपों में अवतरित होता है। परब्रह्म के स्वरूप को केवल 'योग' द्वारा ही जाना या प्राप्त किया जा सकता है।[2]

चित्तवृत्तियों के (व्यापार) से मनुष्य नाना प्रकार के क्लेशों में पड़कर (84 लाख) योनियों में आवागमन करता रहता है और नाना प्रकार के कष्टों को भोगता है। इसलिए चित्तवृत्तियों का निरोध करना परमावश्यक है । योग द्वारा चित्तवृत्तियों का निरोध कर मन को वश में किया जा सकता है । मन के वश में रहकर मनुष्य प्रकृति और पुरूष को अपना स्वरूप समझ लेता है और सांसारिक भोगों को भोग करता रहता है। इस अज्ञान को दूर करने का एकमात्र साधन योग है । योगभ्यास से मन को वश में किया जा सकता है। योगदर्शन में विभिन्न प्रकार के आसन बताये गये हैं,

---

1. सत्यं विज्ञानमनन्तं ब्रह्म......
   सर्वभूतनिगूढो भूतयोनिर्योगैकगम्यः । (शा0 उप0 अ0 २/१)
2. परब्रह्म निष्क्रियमक्षरमिति -
   स एव दक्षिणतः स एताधस्तात् स एवोपरिष्टात् स एव सर्वम्। (शा0 उप0 अ0 ३/१)

जिन्हें अपनाकर जिनका निरन्तर अभ्यास कर योगभ्यासी किसी भी पद को सरलता से प्राप्त कर सकता है। इन आसनों के निरन्तर और विधिपूर्वक अभ्यास से योगी अपनी नाड़ी शुद्धि कर परमपद को प्राप्त करता है। अतः स्पष्ट है कि योग का अर्थ ही है मिलाना, जोड़ना । योग द्वारा योगी परमब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

अतः परमब्रह्म से मिलने या प्राप्त करने का एकमात्र सरल और सूक्ष्म साधन योग ही है ।

अध्याय - द्वितीय

द्वितीय अध्याय

(क) योग से अभिप्राय

योग शब्द को जर्मन भाषा में 'जाश', लैटिन भाषा में 'इंगून', अरबी में 'सूलक' कहते हैं। 'योग' पद धातु के अनुसार 'युजिर् योगे' तथा 'युज्समाधौ दो प्रकार से निष्पन्न माना जाता है। योग का इतिहास अति प्राचीन है। 'योग' शब्द अनेकार्थक है। 'गणित' के आधार पर दो संख्यों के जोड़ को योग कहा जाता है। 'ज्योतिष' के अनुसार 32 योग बताये गये हैं।[1] इन्हीं के आधार पर जातक के शुभ अशुभ फल का वर्णन किया जाता है। सामान्य लोक व्यवहार में 'योग का अर्थ काला जादु (Black Magic) आदि अर्थ में लिया जाता है। 'अमरकोश' के अनुसार योग का अभिप्राय अनेक प्रकार से है जैसे - कवच, सामदाम भेद दण्ड नीति आदि उपाय, ध्यान, संगति, युक्ति।[2] 'लिंग पुराण' के अनुसार योग का अभिप्राय अष्टांगयोग से है, इस के द्वारा परम पद प्राप्त होता है।[3] अर्थात् महेश पद प्राप्त होता है।

'मुण्डकोपनिषद्' में योग से अभिप्राय उपाय एवं बारम्बार प्रयत्न से है जिस से परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है न कि बल, प्रभाव, तप या प्रमाद से प्राप्त किया जा सकता है।[4]

---

1. नौच्छत्रकूट कार्मुक शृंगाटक वज्र दामनी पाशाः ।
   वीणासरोजमुसलावापीहलशरसमुद्रचक्राणि ।।
   माला सर्पार्द्धेन्दू यवकेदारौ गदाविहगयूपा।
   युग शकट शूल दण्डा रज्जुः शक्तिस्तथा नलो गोलः ।। (सा० व० अ० २१, श० २ - ३)
2. योगः सनंहनोपायध्यान संगीतध्यानयुक्तिषु, इत्यमरः (अ० को० पृ० ५४८)
3. योग शब्देन निर्वानं माहेशंपदमुच्यते
   साधनानि चाष्टधा चास्या कथ्तिानाहि सिद्धये।। (लि० पु पृ० ८८/८९)
4. नायमात्मा बलहीनने लभ्यो म च प्रमादातपसो वाप्यलिंगात
   एतैरूपायैर्यतते यस्तु विद्धां स्तस्यैषआत्माविशते ब्रह्म धाम मुण्डकोपनिषद् (मु० उप०)

गीता में योग से अभिप्राय समत्वयोग एवं स्थिर समाधि है, जबकि कर्म योग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग की तो गीता में सर्वत्र संस्तुति की गई है ।[1]

'भगवत महापुराण' के अनुसार योग से अभिप्राय ज्ञानयोग एवं कर्मयोग रहा है, जबकि भक्तियोग के साथ-साथ क्रिया योग भी दृष्टिगोचर होता है।[2]

योग एक सच्ची विद्या है जिस का फल प्रत्यक्ष होता है। मनुष्य शरीर का परम प्रयोजन समस्त दु:खों से निवृत होना एवं परमानन्द की प्राप्ति है।

महर्षि पतञ्जलि ने अपने योग सूत्रों में इस का सम्यक् प्रतिपादन किया है। उनका योग दर्शन चार पादों में विभक्त है - समाधि, साधन, विभूति तथा कैवल्य। यद्यपि भारत में योग साहित्य पर अनेक भाषाओं में योग विषयक अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं, जिन में योग का मानव जीवन में कितना महत्त्व है इस विषय पर सविस्तार बताया गया है ।

योग विषय अनन्त तथा असीम है। अनेक आचार्यों ने इस की अलग-अलग परिभाषाएँ दी हैं। योग दर्शन एक अति प्राचीन दर्शन रहा है। महर्षि पतञ्जलि ने योग की परिभाषा इस प्रकार की है :-

चित्त् की वृत्तियों का निरोध योग कहा जाता है अर्थात् चित्त् की वृत्तियों को रोक देना ही योग है।[3]

वाचस्पति मिश्र 'चित्त्' से तात्पर्य अन्तःकरण को मानते हैं। योग प्राप्ति में चित्त का महत्वपूर्ण योगदान होने से सर्वप्रथम चित्त् विषयक यथासम्भव परिचय आवश्यक है,

---

1. योगास्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयों विविधत्सया ।
   ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायोऽन्योऽप्ति कुश्चित्त ।। (भा0 गी0)
2. निर्ष्णिानां ज्ञानयोगोंन्यासिनामिह कर्मसु ।
   तेषनिर्विष्ठचित्तानां कर्मयोगस्तु कामिनाम् ।। (भा0 म0 पु0)
3. 'योगशिचतवृत्तिनिरोधः' - (पा0 यो0 सू0 १/२)

वह क्या है ? उसके क्या-क्या रूप हैं ? कौन सी वृत्तियाँ अथवा भूमियाँ होती हैं ? कौन से कलेश होते हैं ? चित्त वृत्तियों से सर्वथा निवृत होने के लिये कौन से उपाय हैं ?

'चित्' -

योग दर्शन में 'चित्त' के विविध स्वरूपों का विवेचन है। योग आत्मसाक्षात्कार और ज्ञान को महत्व देता है। इन दोनों में चित्त का महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। क्योंकि चित्त ही मानव जीवन की समग्र क्रिया प्रतिक्रियाओं का मूल आधार है। इसलिए योग दर्शन की मूल प्रतिज्ञा चित्त की वृत्तियों का नियन्त्रण है। पतञ्जलि के योग दर्शन के अनुसार चित्तवृत्तियों के निरोध को दृष्टि में रखते हुए बुद्धि, मन एवं अहंकार में से किसी एक को चित्त पद से अभिप्रेत नहीं माना जाना चाहिए । योग दर्शन का उद्देश्य साधक के व्यवहार को पूर्णरूप से नियन्त्रित करते हुए निरूद्ध करना है। अतः बुद्धि, मन और अहंकार इन तीनों को ही अन्तःकरण मानते हुए चित्त पद से अभिप्रेत मानना चाहिए। चित्त से तात्पर्य है अन्तःकरण, जो कि बुद्धि का उपलक्षक है। चित्त यद्यपि सत्त्व प्रधान होता है, तथापि उस में तीनों गुणों का सद्भाव रहता है।

पातञ्जलि योग सूत्रों के व्यासभाष्य अनुसार चित्त मुख्य रूप से सत्त्व, रज एवं तामस स्वभाव वाला होने के कारण त्रिगुणात्मक है, यद्यपि चित्त एक है, तथापि त्रिगुण निर्मित होने से, गुणों की विषमत्ता से एवं एक दूसरे के विमर्दन की विचित्रता से विचित्र परिणाम को प्राप्त होता हुआ अनेक अवस्था वाला हो जाता है। सात्विक रूप चित्त ज्ञान स्वरूप है और जब वह रज, तम से सम्बद्ध हो जाता है, उस समय ज्ञान, धर्म, वैराग्य और ऐश्वर्य का प्रेमी हो जाता है। और जब वही चित्त सत्त्वगुण और रजोगुण की न्यूनता होने पर तमोगुण से युक्त हो जाता है, उस समय वह अधर्म,

अज्ञान, अवैराग्य अनैश्वर्य तथा निद्रा आदि में मग्न हो जाता है। पहली अवस्था में चित्त ऐश्वर्य और विषयों को केवल चाहता है, किन्तु ये उसे प्राप्त नहीं होते, क्योंकि वह रज और तम से सम्प्रक्त रहता है, फिर भी सात्त्विक गुण की अधिकता के कारण ऐश्वर्य की उपलब्धि होती है। लेकिन जब चित्त में रज का लेश भी नहीं रहता, तब सत्त्वप्रधान चित्त स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर प्रकृति पुरूष की अन्यथा ख्याति अथवा विवेक प्राप्त कर लेता है। आशय यह है कि इन तीनों गुणों के कारण एक ही चित्त नानास्थितियों को प्राप्त होता है।

चित्तवृत्तियाँ – प्रकृति में सत्त्व, रज, तम रूप तीन गुण रहते हैं। उन में लाघव तथा प्रकाश स्वभाव वाला सत्त्व गुण है, उस का परिणाम विशेष चित्त कहा जाता है। उस चित्त की असंख्य वृत्तियाँ होने पर भी वक्ष्यमाण प्रमाणादि पाँच रूप से संकलित हैं। अर्थात् अनन्त होने पर भी वे पाँच प्रकार की मानी गई हैं प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति ये चित्त की पाँच वृत्तियाँ हैं।

प्रमाण – प्रमाकरणं प्रमाणं – अर्थात् प्रमा का जो करण है वह प्रमाण कहा जाता है। प्रमाणवृत्ति प्रत्यक्ष अनुमान तथा आगम भेद से तीन प्रकार की है। इन्द्रिय द्वारा जो बुद्धि की यथार्थ वृत्ति होती है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। नदी के गंदे पानी को देखकर पिछले दिन हुई वर्षा का अनुमान लगाना अनुमान प्रमाण है, शब्द द्वारा उत्पन्न होने वाली वृत्ति शब्द प्रमाण है।

विपर्यय – वस्तु विशेष के मिथ्याज्ञान को विपर्यय कहते हैं। जो वस्तु जिस रूप में है उसे उस रूप में न समझना मिथ्याज्ञान है। जैसे – सीपी में चांदी, रस्सी में सर्प।

विकल्प – शब्द ज्ञान से उत्पन्न होने वाला किन्तु वस्तु शून्य अर्थात् जिस वस्तु का ज्ञान हो उस वस्तु का अत्यन्त अभाव रहे ऐसे ज्ञान को विकल्प कहते हैं।

निद्रा - किसी वस्तु के अभाव ज्ञान को आलम्बन करने वाली वृत्ति "निद्रा" कही जाती है। इस वृत्ति में जाग्रत और स्वप्न वृत्तियों का अभाव रहता है किन्तु निद्रा में ज्ञान का अभाव नहीं है। क्योंकि इतने पर व्यक्ति जाग्रत अवस्थाओं में - "मैं नीद में प्रर्याप्त सोया" 'मेरा मन शान्त है' आदि की अनुभूति होती है। अतः यह भी एक वृत्ति है और इस वृत्ति का नाम निद्रा है।

स्मृति - अनुभूत विषयों का ठीक-ठीक उसी रूप में स्मरण रहना स्मृति है। यह वृत्तियाँ कार्य उत्पन्न कर हमारे अन्तःकरण में संस्कार रूप में विद्यमान रहती हैं। सादृष्य आदि के कारण समय-समय पर संस्कार वृत्तियां का रूप धारण कर लेते हैं और संसार चक्र चलता रहता है अतः उनका निरोध परम आवश्यक है। यह वृत्तियाँ सुख-दुख मोहात्मक है अतः क्लेश रूप है।

चित्त की भूमियाँ - चित्त की पाँच भूमियाँ मानी गई हैं - (1) क्षिप्त (2) मूढ (3) विक्षिप्त (4) एकाग्र (5) निरूद्ध ।

क्षिप्त - रजोगुण के शब्दादि विषयों में निरन्तर भ्रमण करने वाला चित्त 'क्षिप्त' कहलाता है। यह प्रायः राक्षसों का माना जाता है।

मूढ - तमोगुण की प्राबल्य वाली चित्त की अवस्था को 'मूढ' भूमि कहते हैं। अर्थात् तमोगुण की अधिकता और बुद्धि से कर्त्तव्य अकर्त्तव्य के विचार से रहित कर्म करने वाला चित्त 'मूढ' कहलाता है। ऐसा चित्त प्रायः पिशाचों का होता है।

विक्षिप्त - यह क्षिप्त की अपेक्षा कुछ श्रेष्ठ सात्विक गुण के अविर्भाव से कभी-कभी स्थिरता प्राप्त करने वाला चित्त है। यह चित्त मानवों तथा देवताओं का होता है। क्षिप्त दशा में विक्षिप्त की स्थिति विशिष्ट है, क्योंकि क्षिप्त में चित्त चंचल रहता है और विक्षिप्त में मन स्थिरता प्राप्त करने लगता है।

एकाग्र - वर्हिवृत्तियों का निरोध करने वाला चित्त 'एकाग्र' कहलाता है। सत्त्वगुण की प्रधानता में ही चित्त एकाग्र होता है। ऐसा चित्त प्रायः योग के जिज्ञासुओं अथवा योग की प्रारम्भिक अवस्था वालों का होता है।

निरूद्ध - चित्त की वह अवस्था जिस में केवल संस्कर ही शेष रहते हैं। समग्र वृत्तियों का निरोध करने वाला चित्त निरूद्ध कहा जाता है। यह स्थिति अन्तिम भूमिका वाले सिद्ध योगी के चित्त की होती है।

चित्तकलेश - चित्त के पाँच प्रकार के कलेश माने गये हैं - (1) अविद्या (2) अस्मिता (3) राग (4) द्वेष (5) अभिनिवेश

चित्तवृत्तियाँ क्लिष्ट और अक्लिष्ट प्रकार से दो प्रकार की हैं। जिस स्मरण से मनुष्य का भोगों में वैराग्य होता है तथा जो योग साधनों में श्रद्धा और उत्साह बढ़ाने वाला एवं आत्मज्ञान में सहायक है, वह तो अक्लिष्ट है अर्थात् जिस में सत्त्व गुण की प्रधानता रहती है वह अक्लिष्ट वृत्ति है। और जिस में रजोगुण और तमोगुण प्रधान होने से भोगों में रागद्वेष बढ़ता है वह क्लिष्ट है। चित्त की वृत्तियों का सर्वथा निरोध करने के लिये अभ्यास और वैराग्य ये दो उपाय बताये गये हैं। [1]

चित्त वृत्तियों का प्रवाह परम्परागत् संस्कारों के बल से सांसारिक भागों की ओर चल रहा है, उस प्रवाह को रोकने का उपाय वैराग्य है और उसे कल्याण मार्ग में ले जाने का उपाय अभ्यास है।

योग की आवश्यकता -

आधुनिक युग में जितनी आवश्यकता विज्ञान की है उतनी ही अधिक

---

1. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।। (पा0 यो0 दा0)

आवश्यकता योग की सिद्ध होती है। आधुनिक युग में मानव ने विकास तो किया है, परन्तु वह अपने से बहुत दूर होता चला जा रहा है। आज के मानव के पास सुख के सभी साधन उपलब्ध होने पर भी उस के भीतर कुछ कमी है, जिसे पाने के लिए वह सर्वदा प्रयत्नशील है। जैसे-जैसे विज्ञान प्रगति पथ पर अग्रसर होते हुये विकसित हो रहा है, व्यक्ति भी उतना ही भौतिकवादी बन गया है तथा व्यक्ति अधिक से अधिक भौतिक सुख साधनों के प्रति आकृष्ट होता जा रहा है। जिस के परिणाम स्वरूप मनुष्य की मानसिक एवं शारीरिक क्षमता दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है। यही कारण है कि उस को विभिन्न प्रकार की व्याधियों ने घेर लिया है तथा मानव का जीवन अशान्त एवं भयावह हो गया है। जिन से मुक्ति दिलाने एवं सुलभ उपाय है - योग । आज चारों ओर फैले हुए आतंक ने जहाँ मनुष्य की मानसिक शान्ति को भंग कर दिया है, वहीं दूसरी ओर रोगों ने घेर रखा है - ऐसे समय में योग मानव-जीवन के लिए रामबाण औषधि सिद्ध हो सकता है।

प्राचीन युग में शारीरिक, मानसिक स्वस्थता के क्षेत्र में आयुर्वेद प्रद्धति का एकाधिकार था। जिस का स्थान बदलते हुये परिदृश्य में एलोपैथिक पद्धति ने ग्रहण कर लिया और आयुर्वेद पद्धति सीमित हो कर रह गई। परन्तु सत्य तो सत्य ही होता है, जिस का निराकरण कर पाना कठिन ही नहीं, अपितु सदा सर्वदा असम्भव भी होता है।

ऐसे ही आज पुनः समय की पुकार ने आयुर्वेद की महत्ता को अनुभव किया है और विश्व भर में इस की प्रक्रिया को अपनाने पर बल दिया जा रहा है। ऐसे ही योग के साथ भी हुआ। लोग इस की महत्ता को भूल गये और अन्धाधुन्ध विज्ञान का अनुकरण करने लगे । परन्तु आज विश्वभर में योग की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। चाहे वो शरीरिक क्षेत्र में हो, सामाजिक हो या पर्यावरण की ही क्यों न हो।

सर्वत्र समभाव बनाये रखने में योग मुख्य भूमिका निभा सकता है, यद्यपि आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति के लिए एवं रहस्यों को जानने के लिए इस की परमावश्यकता तो है ही, परन्तु इन्हीं के साथ भ्रष्ट सामाजिक रूप को सुधारने में योग की भी उतनी ही आवश्यकता है जिस प्रकार देह के लिए प्राण परमावश्यक है, ठीक उसी प्रकार एक स्वच्छ शरीर, स्वच्छ समाज एवं स्वच्छ पर्यावरण को बनाये रखने के लिए योगभ्यास भी परमावश्यक है।

भारतीय योग विश्व के जनमानस का अभिलाषित मनोरथ पूर्ण करने में पूर्णतया समर्थ है। यही कारण है कि आज सम्पूर्ण विश्व में योग के प्रति विशेष अभिरूचि देखी जा रही है। केवल भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी योगप्रशिक्षण केन्द्र खुल रहे हैं। योग जीवन को सार्थक बनाने वाले साधनों में से उत्तम साधन हैं। यह मनुष्य को सभी प्रकार के आवरणों और विक्षेपों से सदा के लिए मुक्त कर विशुद्ध अन्तःकरण वाला बना देता है और परमात्मा से उस का अभिन्न सम्बन्ध अपने आप स्थापित हो जाता है।

भगवान् श्री कृष्ण का कथन है - 'योग से युक्त, विशुद्ध अन्तःकरणवाला विजितात्मा-शरीरजयी, जितेन्द्रिय और सब भूतों में अपने आत्मा को देखने वाला यथार्थ ज्ञानी हो जाता है। इस प्रकार स्थित पुरूष लोक संग्रह के लिए कर्म करता हुआ भी उन से लिप्त नहीं होता अर्थात् कर्मों से नहीं बंधता।'[1] योग तन को सुगठित, मन को नियन्त्रित और आत्मा को उद्भासित करता है। यह सभी अभ्युत्थानों का सब से मुख्य आधार एवं सारस्वत उपलब्धि का अक्षुण्ण स्रोत है। इस के नियमित अभ्यास से मनुष्य के सारे संशय दूर हो जाते हैं । अपनी ऊँचाई के चरम बिन्दु पर पहुँचकर योग आत्मा और परमात्मा के मिलन का अप्रतिम माध्यम बन जाता है। तत्त्वदर्शी महर्षियों ने परमात्मा की प्राप्ति का सर्वोत्तम उपाय 'ध्यान' अर्थात् 'योग' ही

बताया है योग के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने उद्धवजी को यही समझाया था कि-प्रिय उद्धव ! मैंने ही वेदों में एवं अन्यत्र भी मनुष्यों का कल्याण करने के लिए अधिकारिभेद से तीन प्रकार के योगों - ज्ञान योग, कर्मयोग और भक्तियोग का उपदेश दिया है। मनुष्य के परम कल्याण के लिए इनके अतिरिक्त और कोई उपाय कहीं नहीं है। योग का यह वैशिष्ट्य है कि उस की साधना की ज्योति में आत्मत्तत्व द्वारा परब्रह्म परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति हो जाती है, फिर तो उस के सामने किसी प्रकार का बन्धन नहीं रह जाता। योगयुक्त होते ही इन्द्रियाँ सही रूप में विकसित होने लगती है। इन्द्रियों को जड़ता से ऊपर उठाने वाला अनुपम तत्त्व योग ही है। योगाभ्यास से एक साथ अनेक लाभ होते हैं। यथा - आलस्य, त्याग, आत्मबल, विस्तार, भय, संशय, निवारण, उत्साहवृद्धि, स्वावस्थ्य लाभ, बौद्धिक विकास, आध्यात्मिक उन्नयन आदि। योग एक व्यवहारपरक विद्या है। इसलिए साधारण से साधारण व्यक्ति भी इस के अभ्यास से असाधारण लाभ उठा सकता है। अनेक योगासन हैं जिन्हें अपनाकर शारीरिक एवं मानसिक शक्तियों का विकास किया जा सकता है, क्योंकि शरीर और मन के स्वस्थ रहने पर ही मनुष्य कठिन से कठिन कार्यों को सम्पन्न कर लेता है। जैसे कहा भी जाता है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास रहता है। संसार को भयंकर रोगों से मुक्त करना अथवा उन से बचे रहने का मार्ग दर्शन करना योगविद्या की महानूदेन है। आज भी अनेक चिकित्सा-केन्द्रों में विभिन्न शारीरिक एवं मानसिक रोगों की चिकित्सा की जाती है। शारीरिक और मानसिक इन द्विविध रोगों के निवारण के लिए योग में दो प्रकार की साधनाएं निर्धारित की गई हैं - बहिरंग और अन्तरंग। अष्टांगयोग के प्रथम पाँच अंग अर्थात्

---

1. योगयुक्तो विशुद्धात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ।। (भा0 गी0, 5/7)

यम-नियम-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार बहिरंग साधन हैं तथा अन्तिम तीन धारणा-ध्यान-समाधि अन्तरंग साधन कहे गए हैं। शरीर की स्वस्थता के लिए बहिरंग साधन और मानसिक स्वस्थता के लिए अन्तरंग साधन विशेष रूप से उपयोगी हैं। योग-साधना का प्रत्येक अंग अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। योग-साधन ऐसा है कि इस का थोड़ा सा अनुष्ठान करने से ही उचित लाभ हो सकता है। इसलिए कहा जाता है कि-सम्पूर्ण शास्त्रों में यह योग शास्त्र ही प्रत्यक्ष अनुभव का शास्त्र है।

योग के सम्यक् अभ्यास से तो रोग और जरा-जन्य कलेश का परिहार होता ही है, साधक को इच्छामृत्यु की शक्ति भी प्राप्त हो जाती है। अर्थात् योगाग्निमय शरीर को प्राप्त कर लेने वाले उस योगी के शरीर में न तो रोग होता है, न बुढ़ापा आता है और न उस की मृत्यु ही होती है।[1] यह योग का ही प्रभाव है कि मनुष्य का शरीर काल के निकष पर खरा उतरकर तप्त कञ्चन की भांति दमकता रहता है और प्राणवायु पर अधिकार कर लेने से उस का मन भी सदा के लिए परिशुद्ध हो जाता है।[2]

इस प्रकार मनुष्य के सर्वांगीण विकास में योग-तत्त्व चरित्र-निर्माण, चिकित्सा-विधान, सामाजिक उत्थान, राष्ट्रोन्नयन एवं विश्व-कल्याण की भावना को विकसित करने से लेकर परमात्म साक्षात्कार तक पहुचने में योग अप्रतिम साधन है। योग ज्ञान के बिना मन को नियन्त्रित कर पाना बड़ा कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। जिस के कारण स्वरूप समाज में प्राणिमात्र ही नहीं, बल्कि पूर्ण समाज अनियन्त्रित-सा होने लगता है। जिसके परिणाम स्वरूप राजा औरा प्रजा दोनों ही एक

---

1. न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः
प्राप्तस्य योगाग्निमय शरीरम् । (श्वे॰ उप० २/१०)
2. मनोऽचिरात् स्याद्विरजं जितश्वासस्य योग्निः ।
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वैमलम् ।। (भा० प्र० ३/२८/१०)

दूसरे के अनुकूल व्यवहार न करके प्रतिकूल व्यवहार करने लगते हैं। फलतः समाज में भ्रष्टाचार फैलने लगता है। जो समाज मन को वश में नहीं रख सकता, धीरे-धीरे वह समाज पतन की ओर अग्रसर होने लगता है। जैसे कठोपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है – जो सदा विवेकहीन बुद्धि वाला और मन को वश में नहीं रखता, उस की इन्द्रियाँ असावधान सारथि के दुष्ट घोड़ों की भाँति वश में न रहने वाली हो जाती है।[1]

योग को मनोज्ञान भी कहा गया है। ऐसा इसलिए कहा गया है, क्योंकि योग भड़कते हुए मन को नियन्त्रित करने की क्षमता रखता है। योग में ऐसी अनेक क्रियायें हैं, अनेक ऐसे मार्ग हैं, जिन्हें अपनाकर मन पर विजय पायी जा सकती है। जैसे कबीर दास जी ने अपने दोहों में कहा है कि मन के हार जाने पर मनुष्य सब कुछ हार जाता है, और मन को जीत लेने से जीत लेता है।[2] अर्थात मन को वश में करना परमावश्यक है। कहने का अभिप्राय यह है कि निरन्तर योगाभ्यास से मन को वश में कर मनुष्य शांति प्राप्त कर सकता है। शरीर और मन के साथ-साथ सुस्वस्थ समाज की स्थापना में भी योग का अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। हमें योग से स्पष्ट आदेश प्राप्त होते हैं कि यदि आप अपने समाज को अर्थात् विश्व में शान्ति की इच्छा रखते हो तो मन, वाणी, कर्म से योग में निर्दिष्ट किये गये धर्मों का पालन करने लगेंगे तो न ही कोई पराया लगेगा और न भ्रष्टाचार उत्पन्न हो पायेगा। फलतः सब और प्रेम का वातावरण बनेगा, जिस से धनी एवं निर्धन के बीच की जो दूरीयाँ हैं, वह भी दूर होंगी अर्थात् द्वैतभाव की जो भावना है, वह अद्वैतभाव बदल जाएगी, जिस से पृथिवी पुनः स्वर्गधाम बन सकती है। कहने का अभिप्राय यह है कि योग समाज

---

1. यस्त्वविज्ञानवान भवत्ययुक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि अश्वयानि दुष्टाश्चा इव सारथेः ।। (कठो0उप0 १/३)
2. मन के हारे हार है, मन के जीते जीत - कबीर
कह कबीर पुनी पाइए, मन के ही परतीत ।। (स0 भा0 दो0 १५)

को जोड़ता है तोड़ता नहीं, क्योंकि योग का अर्थ ही जोड़ना है।

योग का पर्यावरण के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। योग अहिंसा का प्रसार करते हुये कहते है कि समाज में सर्वत्र अहिंसामय वातावरण रहना चाहिए और सभी प्राणी एक समान हैं और अहिंसा सब पर एक जैसे लागू होती है। गीता में श्रीकृष्ण ने भी अहिंसा को परम धर्म बताया है। योग के माध्यम से शारीरिक पर्यावरण भी दो प्रकार का माना गया है प्रथम शारीरिक, द्वितीय मानसिक शरीरिक पर्यावरण को व्यायाम से तथा मानसिक पर्यावरण को बनाये रखने के लिए शास्त्र चिन्तन, गुरु आज्ञा एवं सत्यधर्मों के पालन की आवश्यकता पर बल दिया गया है। मानसिक एवं शारीरिक सन्तुलन को बनाये रखने के लिए मनुष्य की सर्वश्रेष्ठ मित्र या साथी योग ही रहा है, जिसे अपनाकर मनुष्य इस विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकता है कि कौन सा द्रव्य उस के लिए उपयुक्त है और कौन सा अनुपयुक्त है। इस बात के ज्ञान के लिए मन-बुद्धि का एक होना परमावश्यक होता है, जिन्हें योगाभ्यास से एकाग्र किया जा सकता है। मन क्षण भर में वस्तु के सभी पहलुओं पर प्रकाश डालता है और बुद्धि उसे अपने नियन्त्रण में रखकर उस से सभी कार्य करवाती है। योग की यही विशेषता है जो यह भड़कते हुये मन को कुछ यम नियमों से, तो शेष को षड् अंग योग से नियन्त्रण पा लेता है। जिस से शारीरिक एवं मानसिक पर्यावरण संतुलित रह सकता है।

संसार में जो भी वस्तु द्रव्य या क्रिया उत्पन्न होती है, उस से समस्त समाज लाभ पाता है। परन्तु लाभ के साथ ही साथ हानि का भी सम्बन्ध रहा है। जैसे पुण्य के साथ पाप का, ज्ञान से अज्ञान का, धर्म से अधर्म का सम्बन्ध समाज में स्थित है। वैसे योग से लाभ अधिक, हानि कम है। योग दर्शन समाज को निष्काम कर्म मार्ग की ओर चलने के लिए प्रेरित करता है और शिक्षा देता है कि जात-पात से ऊपर उठकर विश्व के उत्थान के लिए काम करो । मनुष्य को कर्त्तव्यपरायण होकर काम करना

और फल की इच्छा न रखना ही योग की शिक्षा है। योग का मानना है कि जो व्यक्ति जिस काम को कपटकारी समझकर त्याग देता है, वह वास्तव में उसे कर सकता है। बस आवश्यकता है तो प्रेरणा की और योग उस की प्रेरणा का एकमात्र स्रोत है। अर्थात् निरन्तर योगाभ्यास से व्यक्ति हर प्रकार का लाभ प्राप्त कर सकता है। योगाभ्यास करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि योग की शिक्षा देने वाला प्रशिक्षक बहुमुखी प्रतिभा का धनी हो, जो सम्यक् योग की शिक्षा प्रदान कर सके। उसे योग की विभिन्न-विभिन्न श्रेणियों का ज्ञान होना चाहिए, जिस से शारीरिक बल की अनावश्यक बृद्धि न हो और न ही अनावश्यक ह्रास हो, यदि ऐसा करने में प्रशिक्षक विफल रहता है, तब योग की हानि का भय भी रहता है। इसलिए शुक्ल यजुर्वेद में कहा गया है कि राजा को ''योग के लिए एक योगवेत्ता की नियुक्ति करनी चाहिए।'' [1]

(ख) योग के अंग और प्रकार

योग के आठ अंग होते हैं। आठ अंगों के कारण यह अष्टाँगयोग कहलाता है। योग के आठ अंगों के विषय में योगदर्शनकार का कथन निम्न प्रकार से है - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धरणा, ध्यान और समाधि। ये योग के आठ अंग बताए गए हैं । [2]

महर्षि पतञ्जलि ने जीवों के कल्याण के लिए नाना प्रकार के शास्त्रों में वर्णित एवं आप्त-पुरूषों द्वारा व्यवहृत योग सम्बन्धी सारतत्त्व को अष्टांगयोग के रूप में प्रतिपादित किया है। जीव के बन्धन अथवा दुःख का मूल कारण अज्ञान है । वह प्रकृति से अलग है, परन्तु भ्रान्ति से उस को अपना रूप समझता है। यह भ्रान्ति

---

1. ''योगाय युक्तारम्'' - (शु0 यजु0, अ0 ३, मं0 १४)
2. ''यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टांगीना'' - (यो0 सू0 २/२९)

अथवा अज्ञान जब तक दूर नहीं होता, तब तक आवागमन के दुःखमय चक्कर से छुटकारा नहीं हो सकता। इस अज्ञान की निवृत्ति के लिए योग अथवा समाधि उत्कृष्ट साधन माना गया है।

योग के आठ अंगों से योगी को क्या लाभ होता है, इस विषय में महर्षि पतञ्जलि का कथन है - योग के आठ अंगों का अनुष्ठान करने से चित्त के मल का अभाव होकर वह सवर्था निर्मल हो जाता है। उस समय योगी के ज्ञान का प्रकाश विवेक ख्याति तक हो जाता है। अर्थात् उसे आत्मा का स्वरूप बुद्धि, अहंकार और इन्द्रियों से सर्वथा भिन्न प्रत्यक्ष दिखाई देता है।[1]

योग के उपर्युक्त आठ अंग सम्पूर्ण मानव जीवन के अन्तः शुद्धिकरण के लिए विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इनके द्वारा शारीरिक और मानसिक दोषों का जिस प्रकार निराकरण होकर निर्मलभाव उत्पन्न होता है, वही वास्तव में मानव जीवन के उच्चादर्शों का द्योतक है।

वर्तमान में स्वार्थ, परिग्रह और दुराचार की प्रवृत्ति ने मानव जीवन में प्रवेश करके जीवन की आस्थाओं, नैतिक मूल्यों और उच्च आदर्शों को जिस प्रकार गिरा दिया है और जीवन को यथार्थ से विमुख कर कृत्रिमता, आडम्बर तथा भौतिकवाद की ओर तीव्रता से उन्मुख किया है, उस से निश्चय ही पौर्वात्य संस्कृति और सभ्यता के आदर्शों की नींव हिलने लगी है। वैज्ञानिक और प्रगतिशील कहे जाने वाले वर्तमान युग में जिस रूप में भौतिकवाद का साम्राज्य छाया हुआ है, उस से प्राचीन सांस्कृतिक और सामाजिक मूल्यों पर भीषण कुठाराघात हुआ है। योग के द्वारा मनुष्य को एक ऐसा सुदृढ़ नैतिक आधार प्राप्त होता है, जिस से वह अपने अन्तःकरण की सम्पूर्ण शक्तियों का विकास कर हीन और तुच्छ विचारों से बहुत अधिक ऊपर उठ जाता है। इस से

---

1. "योगांगनुष्ठानायशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।" (पा० मो० द०)

मनुष्य का जीवन सीधा, सरल और सात्विक बन जाता है। वह विघटनकारी प्रवृत्तियों से विमुख होकर केवल निर्माण और विकास में सुख का अनुभव करता है।

मनुस्मृति में कहा गया है कि - बुद्धिमान् पुरूष नित्य-निरन्तर यमों का पालन करता हुआ ही नियमों का पालन करे, केवल नियमों का नहीं। जो यमों का पालन न करके, केवल नियमों का पालन करते हैं, वह साधन-पथ से गिर जाते हैं।[1] इन का साधन किये बिना ध्यान और समाधि की सिद्धि होनी कठिन है। अतः योग सिद्धि चाहने वाले पुरूष को यम-नियमों का साधन अवश्य ही करना चाहिए । इन के पालन से चोरी, झूठ, कपट आदि दुराचारों का और काम, क्रोध, लाभ, मोह आदि दुर्गुणों का नाश होकर, अन्तःकरण की पवित्रता होती है। उपर्युक्त दुर्गुण और दुराचार सभी साधनों में बाधक हैं। इसलिये ध्यान और समाधि की इच्छा करने वाले साधकों को दोषों का नाश करने के लिये प्रथम यम-नियमों का पालन करके ही योग के आठों अंगों का अनुष्ठान करना चाहिए। जो पुरुष योग के आठों अंगों का अच्छी प्रकार से साधन कर लेता है, उस का अन्तःकरण पवित्र होने पर ज्ञान की अपार दीप्ति हो जाती है, जिससे उसको इच्छानुसार सिद्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं और सिद्धियाँ न चाहने वाले पुरूष कलेश और कर्मों से छूटकर आत्मसाक्षात्कार प्राप्त कर सकते हैं।

जीव और शिव का मिलना योग है। शिव और शक्ति का मिलना योग है। भक्त और भगवान् का मिलना योग है, चित्तवृत्ति का भगवदाकार होना योग है। वृत्ति का आत्माकार होना योग है। महर्षि पतञ्जलि के अनुसार योगांगों की संख्या आठ है - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि।[1] 'शिव पुराण'

---

1. यमान् सेवत सततं न नित्यं नियमान् बुधः ।
   यमान् पततत्यकुर्वाणो नियमान् केवलान् भजन् ।। (मनु0 स्म0 ४/२०४)

1.क) यम नियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोष्टावङ्गानि। (पा0 यो0 द0)

ख) शि0 पु0 वायुसं0 अ0 ३७, आखिरी श्लोक।

में भी ये ही आठ अंग माने गए हैं। 'गरूड पुराण' में भी यही आठ अंग बताये गये हैं। इन अंगों की दो भूमिकाएँ हैं - (1) बहिरंग (2) अनतरंग।

बहिरंग - यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार इन्हें बहिरंग कहते हैं, क्योंकि उनका विशेषतया बाहर की क्रियाओं से ही सम्बन्ध होता है। धारणा, ध्यान तथा समाधि ये अन्तरंग हैं। इनका सम्बन्ध केवल अन्तःकरण से होने के कारण इनको अन्तरंग कहते हैं।

शडिल्योपनिषद् में भी ''आत्मा की प्राप्ति के उपाय रूप अष्टांग योग का कथन है। इन आठ में प्रथम 'यम' दस हैं 'नियम' भी दस हैं, 'आसन' आठ हैं, 'प्राणायाम' तीन हैं, 'प्रत्याहार' पाँच हैं, 'धारणा' भी पाँच हैं, 'ध्यान' दो प्रकार का होता है और समाधि एक प्रकार की है।[1]

इन आठ अंगों का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है :-

1. यम :-

यम का अर्थ है मन एवं इन्द्रियों का नियमन करना। विभिन्न उपनिषदों जिन में त्रिशिखिब्रह्मणोपनिषद्, वराहोपनिषद्, दर्शनोपनिषद्, शाडिल्योपनिषद् में दस यम प्रतिपादित किए गए हैं - अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा मिताहार और शौच से दश यम होते हैं ।[2]

(क) अहिंसा - मन, वचन, काया और कर्म द्वारा सर्व प्राणियों को सदैव दुःख न देना ही अहिंसा है।

---

1. यम नियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यान समाध्योपटाङ्गानि।
तत्रा दश यमाः । तथानियमाः । आयनान्यष्टौ। त्रिः प्राणायामः।
पञ्च प्रत्याहाराः। तथा धारणाः द्विप्रकारं ध्यानम्। समाधिस्त्वेकरूपः । (शा० उप० अ० १/१)

2.क) अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं ययार्जवम् ।
क्षमाधृतिमिताहारः शौचं चेति यमा दशः ।। (शा० उप० १ अ० १)

ख) त्रिशि ब० उप० ३२-३३/१)

(ख) सत्य - अन्तःकरण और इन्द्रियों द्वारा जैसा निश्चय किया हो, हित की भावना से, कपटरहित, प्रिय वचनों में वैसा-का-वैसा ही प्रकट करना अर्थात् प्राणियों का हितकारक जो हो वैसा ही बोलना सत्य है।

(ग) अस्तेय - असतेय का सामान्य अर्थ है - चोरी नहीं करना। दूसरे के धन में मन, वचन, शरीर और कर्म द्वारा लिप्सा न होना ही अस्तेय है।

(घ) ब्रह्मचर्य - सर्व अवस्थाओं में मन, वचन, काया और कर्म द्वारा सब प्रकार के मैथुनत्याग ब्रह्मचर्य है। ब्रह्मचर्य का सामान्य अर्थ है - ब्रह्म-आत्मा और चर्या-रमण करना अर्थात् अपने शुद्ध चिदानन्दरूप आत्मा में रमण करना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है।

(ङ) दया - दया के अर्थ हैं - कृपा, सुकुमारता, करूण, अनुकम्पा। सभी भूतों में अनुग्रह का भाव दया है। दीनों पर अनुकम्पा करना दया है। दूसरों के साथ, अपने बन्धुओं के साथ, द्वेषियों या मित्रों के साथ सदैव एक जैसा व्यवहार करना दया है।[1]

(च) आर्जत - आर्जत के अर्थ हैं - सादगी, विनम्रता, सरलता, स्पष्टवादिता, सद्वर्ताव, खरापन, ईमानदारी, निष्कपटता उदार व दया होना। अर्थात मन, वचन, काया और कर्म के रूप में अपनी तरफ से लोग शास्त्रीय-अशास्त्रीय आचरण में प्रवृति करें या निवृति करें, तो भी उन सब में समानभाव रखना ही आर्जव है।

(छ) क्षमा - क्षमा का अर्थ है - धैर्य, सहिष्णुता, माफी। सदैव प्रिय तथा अप्रिय में, अपमान अथवा पूजन में बुद्धि को समभाव रखकर सहन करना क्षमा है।

(ज) धृति - धृति शब्द का अर्थ है - लेना, पकड़ना, हसतगत करना, रखना, अधिकृत करना, स्थापित रखना, सहारा देना, दृढ़ता, स्थिरता, स्थैर्य, धैर्य, स्फूर्ति,

---

1. परेवावन्धुवर्गे च मित्रे द्विषादि वा सदा ।
आत्मवद्वत्तितव्यंहि दयैषा परिकीर्त्तिता।। (प० पु०)

दृढ़संकल्प, आत्म संयम, सन्तोष, तृप्ति, सुख, प्रसन्नता, खुशी, हर्ष, यज्ञ, साहित्यशास्त्र में वर्णित - ३३ व्यभिचारी भाव में 'सन्तोष' के अन्तर्गत इस की गिनती की गई है।

अर्थहानि, इष्टबन्धुओं का वियोग अथवा संयोग हो, इन दोनों की प्राप्ति में सर्वत्र चित्त में समत्वभावना को धृति कहते हैं।

(झ) मिताहार - पेट में चौथा भाग खाली रखना तथा उत्तम घी-दूध वाले मधुर पदार्थों का आहार करना ही मिताहार है।

(ञ) शौच - शौच का अर्थ पवित्रता, स्वच्छता से है। जिस के दो प्रकार माने गये हैं - (1) बाह्य और (2) आभ्यन्तर । बाह्यशुद्धि मिट्टी, साबुन, जलादि से की जा सकती है। आन्तरिक शुद्धि मन की शुद्धि है जिसके लिए आध्यात्मविद्या का अभ्यास आवश्यक है। शरीर की शुद्धि जल द्वारा तथा मन की शुद्धि सत्य से होती है। विद्या एवं तपोबल से समस्त प्रकार का अज्ञान दूर होकर बुद्धि शुद्ध होती है।

2. नियम :-

इन्द्रियों को निगृहीत करना नियम है।[1] तेजोबिन्दुपनिषद् में नियम की व्याख्या इस प्रकार की गई है। घट पटादि की विजातीय वृत्तियों का निरोध करते हुए अखण्ड चिन्मात्र की सजातीय वृत्तियों का प्रवाह जो परम आनन्द दायक होता है उस को नियम कहते हैं।[2] उपनिषदों में यमों की भाँति नियमों की चर्चा भी विस्तारपूर्वक की गई है, जो विशेषतः शाडिल्योपनिषद् के प्रथम अध्याय के द्वितीय खण्ड एवं दर्शनोपनिषद् के द्वितीय खण्ड में मिलती है।

तप, सन्तोष, आस्तिक्य, दान, ईश्वर पूजन, सिद्धान्त-श्रवण, ह्री, मति, जप और

---

1. नियमः स्वान्तरिन्द्रियनिग्रहः । (निर्गु० उप०)
2. सजातीयप्रवाहश्च विजातीयतिरस्कृति ।
नियमो हि परानन्दो नियमात्क्रियते बुधैः ।। (तेजो० वि० उप० १/१८)

ब्रत - ये दस नियम हैं [1] इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकर है -

(क) तप - अपने वर्ण, आश्रम, परिस्थिति और योग्यता के अनुसार स्वधर्म अनुशीलन और पालन करना तथा उसके पालन में जो शारीरिक और मानसिक कष्ट हों, उन्हें निर्विकारभाव से सहर्ष सहन करना 'तप' कहलाता है।

(ख) सन्तोष - सन्तोष का अर्थ -शान्ति, परितुष्टि, प्रसन्नता, खुशी, हर्ष, जितना प्राप्त हो उतने में सन्तुष्टि मान लेना सन्तोष माना गया है। [2]

(ग) आस्तिक्य - अस्तित्व को स्वीकार करना आस्तिक्य है। आस्तिक शब्द का अर्थ है, ईश्वर तथा परलोक में विश्वास रखने वाला, अपनी धर्म परम्परा में विश्वास रखने वाला, श्रद्धालु, पवित्रात्मा, भक्त ।

(घ) दान - दान का अर्थ है - देना, अध्यापन, सोचना, समर्पण करना, उपहार, उदारता, न्यायपूर्वक कमाये हुए धन तथा श्रद्धापूर्वक योग्य देश, काल, पात्र को दिया हुआ धन दान कहलाता है।

(ङ) ईश्वरपूजन - "विश्वं विभुः" विश्वरूप परमात्मा को सेवा करना ईश्वर पूजन है। तथा प्रसन्न स्वभाव से यथाशक्ति विष्णु, रूद्र आदि विभूतियों की प्रतिमाओं में व्यापकत्व भावना रखकर षोडशोपचार या पंचोपचार से पूजन करना भी ईश्वर पूजन है।

(च) सिद्धान्त श्रवण - वेदान्त के अर्थ का विचार करना 'सिद्धान्तश्रवण' है। परमात्मा सत्य स्वरूप, अनन्त, ज्ञान, परमानन्दस्वरूप, नित्य, अचल है। ऐसा जान लेना वेदान्त श्रवण माना गया है।

(छ) ह्री - वेदमार्ग में और लोकमार्ग में नीच माने जाने वाले कर्मों को करने में लज्जा का अनुभव करना। शाण्डिल्योपनिषद् में वैदिक तथा लौकिक मार्ग में कुत्सित

---

1. तपः सन्ऽतोषाास्तिक्ययानेश्वरपूजनद्धिान्तश्रवण ह्रीमतिजपव्रतानि दशनियमाः ।
2. सन्तोषो नाम यदृच्छलाभसन्तुष्टिः । (शा0 उप0 १/२/)

कर्मों में आगत लज्जा को ही लज्जा कहा गया है। श्रीमद्भागवत में कर्मों को करने में जो जुगुप्सा है, उसे लज्जा कहा गया है। साहित्यदर्पण में किसी के सामने कर्म करने में झिझक को जुगुप्सा कहते हैं। इस प्रकार ह्री का अर्थ, गुरुजनों के सामने लौकिक, वौदिक मार्ग का पालन लज्जा के साथ करने के भाव से है।

(ज) मति - वेदोक्त कर्म में श्रद्धा रखना। योग में मति का अर्थ ज्ञान तथा श्रद्धा से ग्राह्य है।

(झ) जप - गुरुपरम्परा से विधिवत् गुरु द्वारा दी गई विधि के द्वारा आत्म-साक्षात्कार का विषय बार-बार मनन करने को जप कहा जाता है। योग में जप का अर्थ, योगविधि का अभ्यास करना है। जप दो प्रकार के बताये गये हैं - वाचिक और मानिसिक । इस में मानसिक तो मन के द्वारा ध्यानयुक्त होने से होता है और वाचिक दो प्रकार से होता है - ऊँचे स्वर से और मन्द स्वर से । ऊँचे स्वर से जप करने से जितना कहा जाये, उतना ही फल मिलता है, पर मन्द स्वर से जप करने से हजार गुणाफल मिलता है और मानसिक जप का फल तो करोड़ गुणा मिलता है।

(ञ) व्रत - वेद-पुराणों में लौकिक या वैदिक विधि-निषेधमय अनुष्ठानों के नियमों को व्रत कहा गया है।

3. आसन :-

आसन शब्द का सामान्य अर्थ है - बैठना लोक व्यवहार में उस चौकोर या गोल वस्त्र या कम्बल के टुकड़े को भी आसन कहा जाता है। सुखपूर्वक स्थिरता से बहुत काल तक बैठने का नाम आसन है। [1] विभिन्न विद्वानों ने आसनों की संख्या भिन्न-भिन्न मानी है। परन्तु शाडल्योपनिषद् में आठ आसनों विवरण है, जो इस

---

1. स्थिरसुखमासनम् । (यो० द० २/४६)

प्रकार से हैं - स्वस्तिक, गोमुख, पदम, वीर, सिंह, भद्र, मुक्त और मयूरासन ।[1]

4. प्राणायाम :-

प्राणायाम का अर्थ है - श्वास का नियन्त्रण अर्थात् प्राण और अपान को इकट्ठा कर देना, प्राणायाम है। श्वास और प्रश्वास को गति नासिका छिद्रों द्वारा श्वास यन्त्रों के संकुचन और औकुंचन से होती है। प्राणायाम से शरीर में विश्वशक्ति का संचय होता है।

प्राणायाम के तीन भेद हैं - (1) रेचक (2) पूरक (3) कुम्भक ।

1. **रेचक** - प्रश्वास को नासिका छिद्रों द्वारा शरीर से धीरे-धीरे बिल्कुल बाहर निकालने को रेचक कहते हैं। वेग से रेचक करने से बल की हानि होती है तथा रोग उत्पन्न होते हैं।

2. **पूरक** - श्वास को नासिका छिद्रों द्वारा शरीर के अन्दर धीरे-धीरे भरपूर भरने को पूरक कहते हैं।

3. **कुम्भक** - श्वास जो कि पूरक द्वारा शरीर के अन्दर भरपूर भरा है, सब द्वारों को बन्द कर प्रश्वास को रोकने को कुम्भक कहते हैं, अथवा प्राण की क्रिया है श्वास और अपान की क्रिया है प्रश्वास और इन दोनों की गति का अवरूद्ध होना कुम्भक है। कुम्भक के आठ भेद हैं जैसे - (1) सूर्यभेदि (2) उज्जायी (3) शीतकारी (4) शीतली (5) भस्त्रिका (6) भ्रामरी (7) मूर्छा (8) प्लावनी । यह दो प्रकार का है -
(1) सहित कुम्भक (2) केवल कुम्भक ।

---

1. स्वस्तिकगोमुखपद्यवीरसिंहभद्रमुक्तमयूराख्यान्यारसनान्यष्टौ । (शा0 उप0 अ0 १/२/१)

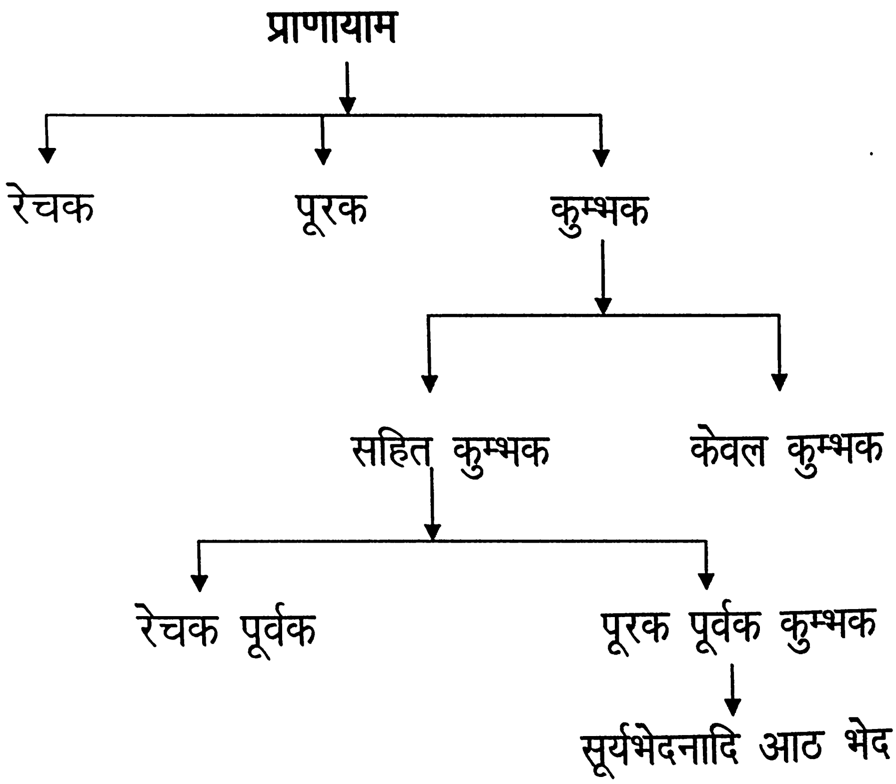

5. <u>प्रत्याहार</u> :-

प्रत्याहार योग का पाँचवा अंग है। पतञ्जलि के अनुसार अपने विषयों से सम्पर्क न होने पर इन्द्रियों द्वारा चित्त के स्वरूप का अनुकरण करने का नाम प्रत्याहार है । वेदान्तसार में भी प्रत्याहार का लक्षण इसी प्रकार दिया गया है। इन्द्रियों को अपने-अपने विषयों से निवृत कर लेना प्रत्याहार है। [1] इन्द्रियों को रोकने वाला चित्त ही है । चित्त के रूक जाने से ये इन्द्रियाँ भी निरुद्ध हो जाती हैं। ये पाँचों अंग योग के बहिरंग साधन हैं, क्योंकि चित्त को स्थिर करने के बाद क्रमशः समाधि तक पहुँचा जा सकता है। धारणा, ध्यान और समाधि चूँकि समाधि के स्वरूप की निष्पत्ति करते हैं, अतः अन्तरंग साधन कहलाते हैं। प्रत्याहार के द्वारा जब मन निरुद्ध हो जाता है, तो समस्त इन्द्रियाँ अपने आप ही निरुद्ध हो जाती हैं और चित्त में ही उनकी समस्त प्रवृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं। फिर पृथक् से इन्द्रियों को जीतने के लिए किसी अन्य

---

1. इन्द्रियाणां स्वस्वविषयेश्यः प्रत्याहरण प्रत्याहारः ।। (वेदा0 सा0 पृ0 १४६/२०४)

उपाय की आवश्यकता नहीं रहती।

शाण्डिल्योपनिषद् में प्रत्याहार के पाँच भेद गिनाये गये हैं।

1. विषयों में घूमती हुई इन्द्रियों को बलपूर्वक खींच लेने को प्रत्याहार कहते हैं।

2. जो-जो देखता है, वह सब आत्मा है, ऐसा समझना प्रत्याहार है।

3. नित्य किये कर्मों के फल का त्याग प्रत्याहार कहलाता है।

4. सभी विषयों से विमुख होने का नाम प्रत्याहार है।

5. अठारह मर्म स्थलों में क्रम से धारणा करना प्रत्याहार है। [1] पैर का अँगूठा, गुल्फ, जंघा, जानु, गुदा, लिंग, नाभि, हृदय, गले का छिद्र, तालु, नाक, आँख, भौंहों का मध्य, ललाट और मस्तक - इन १८ मर्म स्थनों में चढ़ाव-उतार के क्रम से प्रत्याहार करना चाहिए।

6. <u>धारणा</u> :-

'धारणा' योग का अन्तरंग साधन है। धारणा से ध्यान और समाधि होती है। यह योग का छठा अंग है। चित्त को किसी एक देशविशेष में स्थिर करने का नाम धारणा है। [2] अर्थात् स्थूल-सूक्ष्म या बाह्य आभ्यन्तर, किसी एक ध्येय स्थान में चित्त को बाँध देना, स्थिर कर देना 'धारणा' कहलाती है। प्राणायाम के द्वारा प्राण का प्रवेश सुषुम्ना में हो जाने पर चित्त को पञ्च धारणा करनी चाहिए। भूमि-जल-वायु-आकाशादि पञ्च महाभूत सहित इनके देवताओं सहित पाँच धारणायें कही गयी हैं। प्रत्याहार से जब विषयों का व्यावर्तन हो जाता है, उस समय चित्त में चैतन्यता आती है। उस चैतन्यता की धारणा शक्ति को धारणा कहते हैं।

---

1. विषयेषु विचरतामिन्द्रियाणां बलादाहरणं प्रत्याहारः यद्यत्पश्यति तत्सर्वमात्मेति प्रत्याहारः। नित्यविहितकर्मफलत्यागः प्रत्याहारः सर्व विषयपराङ्मुखत्वं प्रत्याहारः। अष्टादशसु मर्मस्थानलेषु कमाद्धारणं प्रत्याहारः। (शा० उप० अ० १/८/८)
2. तत्र देश्बन्धीश्चत्तस्य धारणा - (यो० द० पा० ३/१)

पाँच धारणायें - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश

1. पृथ्वी धारणा -

आकार -	स्थान -	देवता -	वर्ण -	बीज
चोकोट -	हृदय -	ब्रह्म -	पीत -	लं

2. जल धारणा

आकार -	स्थान -	देवता -	वर्ण -	बीज
चन्द्राकार -	कण्ठ -	विष्णु -	श्वेत -	वं

3. अग्नि धारणा

आकार -	स्थान -	देवता -	वर्ण -	बीज
त्रिकोण -	तालु -	रुद्र -	रक्त -	रं

4. वायु धारणा

आकार -	स्थान -	देवता -	वर्ण -	बीज
षटकोण -	भ्रूमध्य -	शिव -	मेघ -	यं

5. आकाश

आकार -	स्थान -	देवता -	वर्ण -	बीज
वृताकार -	कपाल -	ब्रह्म -	श्याम -	हं

भागवत में दो प्रकार की धारणा बतलायी गई है - (1) स्थूल तथा (2) सूक्ष्म। 'शाण्डिल्योपनिषत्' में तीन प्रकार धारणा बतलायी गई हैं। आत्मा में मन की धारणा, दहराकाश में बाहर के आकाश की धारणा और पृथ्वी, जल तेज, वायु तथा आकाश में पाँच मूर्तियों की धारणा। [1]

---

1. आत्मानि मनोधारणं दहराकोशे बाह्याकाशधारणं पृथिव्यप्तेजोवायवाकाशेषु पञ्चमूर्तिधारण।। (शा0 उप0 १, अ0 ८, खण्ड २१.९)

7. ध्यान :-

धारणा में चित्त की किसी एक स्थान पर स्थित किया जाता है। जब वह उस में स्थिर रहकर निरन्तर उसी में एकतार चलता रहता है, उसी को 'ध्यान' कहते हैं।[1] साधना के क्षेत्र में ध्यान का महत्त्व सर्वोपरि है। योग दर्शन में भी एक स्वतन्त्र अंग के के रूप में इस का महत्त्व स्वीकृत है। महात्मा बुद्ध ने भी ध्यान को बहुत अधिक महत्त्व दिया था। 'ध्यान' हमारी चेतना की ही एक अवस्था विशेष है, वह अध्यात्म विद्या का प्राण और साधना का प्रमुख अंग है। ध्यान के बिना न केवल साधना पद्धति, अपितु समग्र अध्यात्म विद्या अपूर्ण है, पंगु है। ध्यान आत्मज्ञान प्राप्ति का एकमात्र साधन है, अतः वह आत्मा का परम हितैषी तत्त्व है, क्योंकि इसके माध्यम से ही मनुष्य अपने लक्ष्य मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। ध्यान के प्रभाव से योगी की जीवात्मा जीव संज्ञा को त्याग कर परमात्मा में मिल जाती है।

ध्यान दो प्रकार का कहा गया है - सगुण और निर्गुण। मुर्ति का ध्यान करना 'सगुण' ध्यान कहा जाता है। और आत्मा के स्वरूप का ध्यान करने को निर्गुण ध्यान कहते हैं।[2] ध्यान से तात्पर्य वस्तुतः परमब्रह्म निर्विकार, अद्वितीय, शुद्ध, चैतन्यमय, सत् आनन्दमय परमात्मा के अनुस्मरण में स्वयं की निरन्तर स्थिति का ही नाम है।

8. समाधि -

समाधि शब्द सम् + धि = से बना माना जाता है, जिसका तात्पर्य समत्व बुद्धि लिया जाता है। जैसा कि गीता में भी भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बतलाया है कि समत्व ही योग है।[3] इसी प्रकार सम् + आधि से भी समाधि शब्द का विश्लेषण किया जाता है जहाँ सम् का अर्थ 'सम्यक्' और 'आदि' का अर्थ आधीमते अर्थात्

---

1. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् । (योग० द० पा० ३, सूत्र २)
2. तद्द्विविधं सगुणंनिर्गुणं चेति।
   सगुणं मूर्तिध्यानम्। निर्गुणमात्मयाथात्म्यम् ।। (शा० उप० ख० ८ अ० १, श्लो० १०)
3. समत्वं योग उच्यते - (भा० गी० अ० २/४७)

आक्षिप्यते चित्तं अस्मिन् इति। तात्पर्य है, जिस अवस्था में चित्त भली प्रकार विलीन हो जाता है, उसे समाधि कहते हैं। भावचिन्तन करके किसी एक विषय पर केन्द्रित करना, अथवा ब्रह्म चिन्तन में चित्त की पूर्णलीनता होना समाधि कहा जाता है। यह योग की आठवीं और अन्तिम अवस्था है। आष्टांग योग में समाधि का विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण स्थान है। साधना की यह चरम अवस्था है, जिसमें समाधिस्थ योगी का बाह्य जगत् के साथ सम्बन्ध टूट जाता है। यह योग की एक ऐसी दशा है, जिस में योगी चरमोत्कर्ष को प्राप्त कर मोक्ष प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है।

धारणा और ध्यान में कोई स्थान या वस्तु विशेष होती है, जिस पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। किन्तु यह ध्यान जब केवल ध्येय वस्तु के आकार में स्थिर हो जाये, न ध्यान रहे न ध्याता, तब उसे 'समाधि' कहते हैं। ध्यानावस्था में ध्यानक्रिया, ध्यान करने वाले तथा ध्येय वस्तु की भी प्रतीति होती है। किन्तु अभ्यास के परिपक्व हो जाने पर तीनों जब एकाकार होकर ध्येय के स्वरूप में प्रतीत होने लगे, तब उस अवस्था को 'समाधि' कहा जाता है।

जीवात्मा और परमात्मा की एकता अनुभव करने से ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता की त्रिपुटी राहित, परमानन्द स्वरूप और शुद्ध चैतन्यमय अवस्था का नाम 'समाधि'[1] है।

जिस प्रकार पानी में नमक मिल जाता है, उसी प्रकार योग द्वारा आत्मा और मन का एक हो जाना 'समाधि अवस्था' कही जाती है।

योगांगों के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि योग के अंग यम-नियमादि का पालन करते हुए योगी समाधि की अवस्था तक पहुँचकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

---

1. जीवात्मपरमात्मैक्यावस्थः त्रिपुटीरहिता
परमानन्दस्वरूपा शुद्ध चैतन्यात्मिका भवति।। (अ० १, ख० ८, शा० उप० श्लो० ११)

अध्याय - तृतीय

तृतीय अध्याय

प्रमुख आसन, प्रक्रिया तथा रोग उपचार :

आसन

स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन का निवास होता है। शरीर की स्वस्थता के कारण ही मनुष्य की धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष में प्रवृति होती है। स्वस्थ शरीर के द्वारा ही ईश्वर की आराधना और लौकिक कर्मों का सम्पादन होता है। शरीर की पुष्टि, अंगों की दृढ़ता, जठराग्नि की प्रदीप्तता, मन और इन्द्रियों की प्रसन्नता तथा शरीर की निरोगता - ये कुछ ऐसे लक्षण हैं, जो स्वस्थ शरीर के परिचायक हैं। उन लक्षणों की सम्पूर्ति हेतु तथा इस के माध्यम से अन्त में परमब्रह्म का साक्षात्कार कर उस से तादात्म्य भाव स्थापित करने हेतु महर्षि पतञ्जलि ने योगांगों के अन्तर्गत 'आसन' का कथन किया है। महर्षि पतञ्जलि ने 'यम' और 'नियम' के पश्चात् तीसरे अंग के रूप में 'आसन' का कथन किया है, किन्तु कतिपय अन्य विद्वानों ने आसन को प्रथमांग के रूप में ही स्वीकार किया है। योगांगों में प्रथमांग के रूप में आसन का कथन करना उस के महत्त्व का परिचायक है। हठयोग में भी आसन को प्रथमांग कह कर उस का प्रतिपादन इस प्रकार से किया है -

हठयोग का प्रथम अंग होने से आसन (के गुण और उसकी विधि) को प्रथम कहते हैं। आसन (शरीर तथा मन में) स्थैर्य, आरोग्य और शरीर के विभिन्न अंगों में लाघव उत्पन्न करते हैं।[1]

इस के अतिरिक्त हठयोग के अभ्यास क्रम में भी आसन प्रथम ही होता है।

---

1. "हठस्य प्रथमांगत्वादासनं पूर्वमुच्यते ।
कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चांगलाघवम् ।।" (हठ0 यो0 १/१७)

हठयोग में आसन, कुम्भक, चित्र, मुद्राख्यकरण, नाद और अनुसन्धान का क्रमानुसार अभ्यास करना चाहिए ।[1] उपनिषदों में जहाँ पञ्चादशांग योग का वर्णन किया गया है वहाँ आसन को सातवाँ और जहाँ अष्टांग योग प्रतिपादित है, वहाँ आसन को तीसरा अंग माना गया है। ध्यान बिन्दु और योग चूड़ामणि उपनिषदों में यम और नियम को आध्यात्मिक साधना की आधारशिला होने के कारण पूर्व गृहीत मान कर उनका स्वतन्त्र योगांग के रूप में उल्लेख न कर षडंग योग का प्रतिपादन करते हुए आसन को प्रथम योगांग बतलाया गया है। अमृतनादोपनिषद् में यम नियम की ही भाँति आसन को भी योग साधना के लिए आवश्यक मानने के कारण उस का स्वतन्त्र योगांग के रूप में उल्लेख न करते हुए भी पद्मासन, स्वस्तिकासन या भद्रासन में बैठकर षडंगयोग की साधना करने का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार उपर्युक्त प्रमाणों से आसन की उपयोगिता और महत्त्व सुस्पष्ट हैं। हठयोग के आचार्यों ने आसन का कथन प्रथमतः करके उस की उपयोगिता को और अधिक बढ़ा दिया है। इस का अभिप्राय यह हुआ कि आसनों का अभ्यास किए बिना योग में सिद्धि प्राप्त नहीं की जा सकती। यम और नियम योगी के आचरण की शुद्धि और मनोगत विकारों को निर्मूल करने के लिए उपयोगी होते हैं। किन्तु आसन का अभ्यास एक ऐसी क्रियाविधि है, जो ब्रह्म-साक्षात्कार कराने का महत्त्वपूर्ण साधन है।

'आसन' शब्द का सामान्य अर्थ है-बैठना । लोक व्यवहार में उस चौकोर या गोल वस्त्र खण्ड या कम्बल के टुकड़े को भी आसन कहा जाता है जो बैठने के काम आता है। इस के अतिरिक्त बैठने के लिए लकड़ी, चमड़ा, कुश या पत्तियों से बनाए गए चौकोर खण्ड की भी 'आसन' संज्ञा है। अतः सामान्य व्यवहार में बैठने के लिए

---

1. आसनं कुम्भकं चित्रं मुद्राख्यकरणं तथा ।
   अथ नादानुसन्धानमभ्यासानुक्रमो हठे ।। - तदैव

प्रयोग किया जाने वाला उपयोगी साधन 'आसन' कहलाता है। शास्त्रीय सन्दर्भ विशेषतः योग के सन्दर्भ में शरीर और उस के षडंगों की विशिष्ट स्थिति को 'आसन' कहते हैं। जब शरीर को सामान्य स्थिति की अपेक्षा हाथ-पैर को संकुचित कर उन्हें ऊपर या नीचे कर शरीर झुकाकर या तानकर किसी विशेष स्थिति में रखा जाता है, तो वह 'आसन' कहलाता है। मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में आसन के निरूपण के प्रसंग में कहा गया है कि आसन ऐसा होना चाहिये कि जिस में व्यक्ति सुखपूर्वक अधिक देर तक बैठ सके।[1]

जो साधक या योगी अपनी योग्यता के अनुसार जिस रीति से बिना हिले डुले स्थिर भाव से सुखपूर्वक बिना किसी प्रकार की पीड़ा के देर तक बैठ सके, वही आसन उस के लिए उपयुक्त होता है। अन्य शास्त्रों में भी आसन का यही भाव प्रतिपादित किया गया है। इसी प्रकार तेजोबिन्दूपनिषद् में प्राप्त विवरण के अनुसार आसन वस्तुतः वह स्थिति है, जिस में सुखपूर्वक चिरकाल तक बैठकर निरन्तर ब्रह्म चिन्तन किया जा सके। ऐसी स्थिति से भिनन अन्य स्थितियाँ केवल सुख का नाश करने की साधन मात्र हैं।[2]

इसलिये जिस स्थिति में बैठकर सुखपूर्वक निरन्तर परमब्रह्म का चिन्तन किया जा सके, उसे ही आसन समझना चाहिए। सुख का विनाश करने वाली अन्य स्थिति आसन नहीं है।

महर्षि पतञ्जलि ने भी आसन की ऐसी ही परिभाषा बतलाई है। स्थिर और सुखपूर्वक बैठना आसन कहलाता है।[3] इस प्रकार शरीर और उसके षडंगों की विशेष

---

1. ''सुखासनवृतिश्चिरणसश्चैवमासननियमो भवति।'' (म० ब्रा० उप० १/१/५)
2. ''सुखेनैव भवेद्यस्मिन्नजस्रं ब्रह्मचिन्तनम् ।
   आसनं तद्विजानीयादन्यत्सुखविनाशनम् ।। (तेजो० वि० उप०)
3. स्थिरसुखमासनम् (यो० सू० २/४६)

स्थिति चाहे वह बैठने की हो, खड़े होने की हो, शरीर को मोड़ने की या सीधा रखने की हो उस को आसन कहा जाता है। कुछ लोग आसन का अर्थ केवल बैठना लगाते हैं। उनके अनुसार सुखपूर्वक बैठना मात्र ही 'आसन' है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। योगशास्त्र में जो आसन बतलाए गए हैं, उनमें अनेक ऐसे हैं जो खड़े हो कर, विभिन्न प्रकार से लेटकर, सिर को नीचा और पैरों को ऊपर कर किए जाते हैं। अतः केवल बैठना ही आसन का ज्ञापक नहीं है।

आसन और व्यायाम :

आसन योग का अंग होने से उन्हें ''योगिक व्यायाम' भी कहा जाता है। वैद्यकीय दृष्टि से आसन और सूर्य नमस्कार आदर्श व्यायाम हैं। सूर्य नमस्कार में व्यायाम के अतिरिक्त भगवान् सूर्य की आराधना पूजा, नमस्कार तीर्थ सेवन इत्यादि दैवीकर्म होने से उसे ''दैवी व्यायाम'' कह सकते हैं। अधिक संख्य सामान्य व्यायाम केवल शरीर बलबर्धक होते हैं। अतः वे शारीरिक व्यायाम कहलाते हैं। शारीरिक व्यायामों की अपेक्षा यौगिक व्यायाम (आसन) और दैवी व्यायाम (सूर्य नमस्कार) अधिक श्रेयस्कर होते हैं, क्योंकि उन में शरीर के साथ-साथ मन और आत्मा भी अनुबंधित रहते हैं।

आसन और व्यायाम का निकटत्तम सम्बन्ध है। आयुर्वेद शास्त्र में व्यायाम की परिभाषा निम्न प्रकार से बतलाई गई है। शरीर की वह चेष्टा जो शरीर की स्थिरता के लिए की जाती है और जो शरीर के बल को बढ़ाने वाली होती है व्यायाम कहलाती है। उसे मात्रापूर्वक करना चाहिए ।[1]

---

1. ''शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवधिनी ।
देहव्यायाम संख्याता मात्रया तां समाचरेत् ।।'' - (च० सं० सू० ७/३१)

इस के अनुसार आसन भी व्यायाम परिधि में आ जाते हैं। क्योंकि योगशास्त्र में वर्णित सभी आसन शारीरिक चेष्टा है और उन से शरीर की स्थिरता होती है तथा शरीर में बल की वृद्धि होती है। आसनों के द्वारा शरीर के अवयव पुष्ट, दृढ़ और स्थिर होते हैं आसनों से शरीर में रक्त संचार व्यवस्थित होता है तथा शरीर के अनेक रोगों का उपशम होता है। आसनों का सतत अभ्यास करते रहने से शरीर को वे गुण सहज ही प्राप्त हो जाते हैं, जो व्यायाम के द्वारा प्राप्त होते हैं। अतः आसन व्यायाम क अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

शारीरिक स्थिरता, बल की वृद्धि शारीरिक आरोग्य तथा अन्य भौतिक से आसन और व्यायाम में जहाँ निकटता और समानता है, वहाँ अनेक दृष्टि से दोनों में भिन्नता भी है। व्यायाम के द्वारा केवल देहसिद्धि ही होती है, जबकि आसन के द्वारा देह सिद्धि के अतिरिक्त मोक्षसिद्धि भी होती है। इस प्रकार व्यायाम की अपेक्षा आसन का क्षेत्र अधिक व्यापक है। आसन जहाँ आध्यात्मिक लक्ष्य प्राप्ति के साधन हैं, व्यायाम वहाँ मात्र भौतिक उपलब्धि तक ही सीमित हैं। कुछ लोग आसनों का सम्बन्ध शक्तिशाली शारीरिक व्यायाम या शरीर को मांसल व पुष्ट बनाने वाली प्रक्रियायों से जोड़ते हैं, किन्तु यह उचित नहीं है। आसनों का उपदेश न तो शरीर को झटके के साथ हिलाने डुलाने के लिए किया गया है और न मांसपेशियों को अनावश्यक रूप से बढ़ाने व पुष्ट करने के लिए ही उनकी रचना है। 'आसन' तो वस्तुतः शरीर की वह स्थिति है, जिस में आसन अभ्यासी या योगी अपने शरीर और मन के साथ शांत, स्थिर और सुखपूर्वक स्थित हो सके। क्योंकि अपनी अन्तरात्मा के साथ एकाकार होने का अनुभव ही 'योग' है और इस अनुभव की उपलब्धि का एक महत्त्वपूर्ण साधन 'आसन' है।

आसन के द्वारा स्वास्थ्य लाभ तो अनायास ही हो जाता है। अनेक रोगों के उपचार के लिए भी विभिन्न आसनों का अभ्यास किया जा सकता है। अनेक रोगों में कतिपय आसन अत्यन्त उपयोगी एवं लाभदायक सिद्ध हुए हैं। कई बार विभिन्न रोगों के उपचार के लिए योगासनों की उपयोगिता असंदिग्ध रूप से सिद्ध हुई। जो व्यक्ति अपनी दैनिकचर्या में से प्रतिदिन नियमित रूप से थोड़ा सा समय भी आसनों के लिए निकालता है, उसे कभी भी बीमारी के लिए अपना कीमती समय बर्बाद करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है स्वास्थ्य विज्ञान के वेत्ता एक प्रसिद्ध विद्वान् का यह कथन - ''जिसे व्यायाम के लिए समय नहीं मिलता, उसे बीमारी के लिए समय निकालना पड़ेगा'' कितना सार्थक, महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है ? यह कथन यद्यपि व्यायाम के लिए कहा गया है, तथापि आसन के लिए भी पूर्णता चरितार्थ होता है।

चाहे धर्म का आचरण करना हो या अर्थ की प्राप्ति, चाहे काम के निमित्त मनुष्य प्रेरित हो या मोक्ष साधन में लगा हुआ हो, शारीरिक आरोग्यता उस के लिए सर्वप्रथम आवश्यक है।[1] शारीरिक स्वास्थ्य के बिना चारों पुरूषार्थों में से किसी भी पुरूषार्थ की प्राप्ति या साधन सम्भव नहीं है। आसनों का अभ्यास करते हुए जब योगी आध्यात्मिक उद्धेश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करता है तो आसनों के अभ्यास के माध्यम से वह धार्मिक आचरण में तो तत्पर रहता ही है, उसके शारीरिक स्वास्थ्य पर भी उन आसनों का अनुकूल प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक आसन किसी न किसी रूप से शरीर के आभ्यन्तरिक अव्यवों और उनकी क्रियाओं को अवश्य ही प्रभावित करते हैं, जिस से सभी अवयवों की क्रियाएं प्राकृत रूप से सम्पन्न होती हैं। इस का प्रभाव यह होता है कि शरीर पर अकस्मात् रोग का आक्रमण नहीं हो पाता और जो रोग पहले से शरीर में विद्यमान है, उस का नाश हो जाता है। अतः शरीर स्वस्थ हो जाता

---

1. ''शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'' - कालिदास

है। इस प्रकार मोक्ष साधन में सहायक आसन पहले ही आरोग्य लाभ उत्पन्न करा देते हैं, जिस से मूल उद्धेश्य की प्राप्ति में कोई बाधा न हो। आसनों के द्वारा आध्यात्मिक साधना के मार्ग में आई हुई बाधाओं का निराकरण होता है और स्वस्थ शरीर उस के लिए पूर्ण सहायक एवं तत्पर रहता है।

आसन और व्यायामों में एक मौलिक अन्तर यह है कि मनुष्य के शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक व्यक्तित्व के विकास में आसनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है, जबकि व्यायामों का प्रभाव केवल शारीरिक स्वास्थ्य, शारीरिक संगठन, शरीर की मांस पेशियों की पुष्टता एवं अथियों की दृढ़ता तक ही सीमित रहता है।

व्यायाम और आसन की क्रिया विधि में भी पर्याप्त अन्तर होता है। अधिकांश व्यायाम प्रायः भारी, शीघ्रतापूर्वक किए जाने वाले और अधिक या त्वरित् श्वास-प्रश्वास की क्रिया वाले होते हैं। इस प्रकार के श्रमसाध्य व्यायाम, भारी वजन उठाने वाले अभ्यास और शारीरिक गठन को लक्ष्यकर की जाने वाली विविध विधियाँ प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी होती हैं। कृशकाय दुर्बल व्यक्ति किसी रोग से पीड़ित व्यक्ति, वृद्ध पुरूष, बालक और स्त्रियां उन व्यायामों का अभ्यास करने में असमर्थ रहती हैं। इन लोगों के लिए व्यायाम को पूर्णतः निषेध माना गया है। इस के विपरीत आसन सरल होते हैं, उन्हें धीरे-धीरे किया जाता है, उन की क्रियाविधि में कोई दुरूहता, श्रमसाध्यता और त्वरित् या अधिक श्वास प्रश्वास की अपेक्षा नहीं रहती है। आसनों की क्रियाविधि की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनके अभ्यास से चित्त में एकाग्रता आती है। आसनों का अभ्यास बालक, वृद्ध, युवा, स्वस्थ, अस्वस्थ स्त्रियों, रोगियों आदि सभी के लिए हितकारी, उपयोगी एवं लाभदायक हैं। इस प्रकार व्यायाम की अपेक्षा आसन अधिक सरल और उपयोगी होते हैं। आसनों का क्षेत्र प्रत्येक दृष्टि से व्यायाम की अपेक्षा अधिक व्यापक है। आसनों का प्रभाव व्यायाम की अपेक्षा

चिरस्थायी और अधिक व्यापक होता है। आसनों का अपना स्वतन्त्र अस्तित्व और महत्व है। वे व्यायाम की अपेक्षा अधिक उपयोगी हौर उत्कृष्ट होते हैं। मनुष्य मात्र के लिए उनकी उपयोगिता असंदिग्ध है।

आसनों की संख्या एवं प्रकार :

आसनों की संख्या और प्रकार (भेद) के विषय में शास्त्रों, शास्त्रकारों एवं विद्वानों में मतैक्य नहीं है। उपनिषदों में इस विषय में भिन्न-भिन्न मत देखने को मिलते हैं। योग चूड़माव्युपनिषद् में सिद्धासन और कमलासन बतलाए गए हैं, जबकि योगकुण्डल्युपनिषद् में पद्म एवं वज्र इन दो आसनों का प्रतिपादन किया गया है। अमृतनादोपनिषद् में तीन आसनों–पद्मासन, स्वस्तिकासन और भद्रक–का उल्लेख है। ध्यानबिन्दुपनिषद् एवं योगतत्त्वोपनिषद् में –सिद्ध, पद्म, सिंह एवं भद्र – इन चार आसनों को सभी आसनों में मुख्य बतलाया गया है। दर्शनोपनिषद् के तृतीय खण्ड के प्रारम्भ में निम्न नव आसनों का उल्लेख मिलता है – स्वस्तिकासन, गोमुखासन, पद्मासन, वीरासन, सिंहासन, भद्रसन, मुक्तासन और सुखासन। वराहोपनिषद् में योगियों के लिए चक्रासन, पद्मासन, कूर्मासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, वीरासन, स्वस्तिकासन, भद्रासन, सिंहासन, मुक्तासन, और गोमुखासन इन आसनों का प्रतिपादन करते हुए चक्रासन का स्वरूप बतालाया गया है। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् में सत्रह आसनों का उल्लेख विवरण सहित मिलता है, जिन में उपर्युक्त ग्यारह आसनों के अतिरिक्त योगासन, बद्धपद्मसन, उत्तानकूर्मासन, मयूरासन, धनुरासन और पश्चिमोत्तानासन इन छह आसनों का विवरण अधिकता से प्रतिपादित किया गया है।

प्राचीनकाल में योगियों ने पशु पक्षियों के बैठने के ढंग तथा उनकी विशेषताओं का अध्ययन सूक्ष्मता से किया। उन्होंने देखा कि पशु – पक्षियों के बैठने के ढंग अलग–अलग प्रकार के हैं और वे किसी न किसी रूप में मनुष्य के लिए उपयोगी हैं।

इसलिए योगियों ने उन पशु - पक्षियों के बैठने के ढंग का अनुसरण करते हुए आसन के रूप में उन्हें अपनाया और उन से लाभ उठाया। जिस पशु या पक्षी के बैठने के ढंग का अनुसरण करते हुए मनुष्य को विशेषलाभ या सुख का अनुभव हुआ, मनुष्य ने उसे अपनाकर के उस प्रकार विशेष का नामकरण उसी पशु या पक्षी विशेष के नाम के साथ जोड़ दिया । जैसे - मयूरासन, कुक्कटासन, मत्स्यासन, मकरासन आदि। इस के अतिरिक्त योगियों ने पर्वत, वृक्ष, चक्र, धनुष आदि स्थावर द्रव्यों की स्थितियों के अनुकरण के आधार पर साधक के बैठने, खड़े होने आदि की स्थिति की कल्पना की। उस स्थिति में रहकर तज्जनित हानि-लाभ की विवेचना की तथा जिन स्थितियों में उसे अनुकूलता प्रतीत हुई और लाभ का अनुभव हुआ उस स्थिति को आसन के रूप में अपनाकर उसके आधार पर आसन का नामकरण किया। इस से आसन के अनेक प्रकार हो गए और संख्या अनन्त हो गई। 84 आसनों के विषय में कोई सर्वसम्मत राय वर्तमान में उपलब्ध नहीं है। योगीजन या विद्वज्जन अपनी इच्छानुसार भिन्न-भिन्न आसनों का निर्धारण स्वतः ही कर लेते हैं, जिससे आसनों में तो भिन्नता प्रतीत होती ही है, उनकी संख्या में भी पर्याप्त भिन्नता लक्षित होती है, वर्तमान में विभिन्न योगियों, योगशास्त्र के ज्ञाताओं और विद्वानों के जो मत उपलब्ध होते हैं, उनमें अनेक आसनों के नामों और उनकी संख्या में पर्याप्त भिन्नता पाई जाती है। अतः सर्वसम्मत 84 आसनों के नाम यहाँ लिखना सम्भव नहीं है। फिर भी प्रचलित सभी आसनों को संकलितकर उनमें से 84 आसनों का नाम-निर्देश यहाँ किया जा रहा है, जो सर्वसम्मत तो नहीं है, किन्तु अधिक संख्य सम्मत हो सकता है। 84 आसनों के नाम इस प्रकार हैं -

1.	पद्मासन	2.	सिद्धासन	3.	स्वस्तिकासन
4.	सुखासन	5.	वीरासन	6.	भद्रासन

7. वज्रासन	8. नौकासन	9. शवासन
10. अद्धासन	11. ज्येष्टिकासन	12. मकरासन
13. सिद्धायोनिआसन	14. उत्कटासन	15. शशाँकासन
16. मार्जरिआसन	17. मृगासन	18. उष्ट्रासन
19. प्रणामासन	20. सूर्यनमस्कारासन	21. सुमेरूआसन
22. व्याघ्रासन	23. नाभिआसन	24. कटिचक्रासन
25. ताड़ासन	26. लोलासन	27. मेरुपृष्ठासन
28. उत्तानासन	29. कोणासन	30. दोलासन
31. मत्स्यासन	32. पवनमुक्तासन	33. कुक्कुटासन
34. हृदयस्तम्भासन	35. तोलांगुलासन	36. भुजंगासन
37. शलभासन	38. धनुरासन	39. ग्रीवासन
40. कंधरासन	41. सेतु आसन	42. शीर्षपादासन
43. अर्धन्द्रासन	44. पृष्ठासन	45. गोमुखासन
46. मेरुवक्रासन	47. कपालिआसन	48. शीर्षासन
49. सर्वाङ्गासन	50. गरूड़ासन	51. वकासन
52. पर्वतासन	53. मेरुदण्डासन	54. वशिष्ठासन
55. नटवरासन	56. पूर्णमत्स्येन्द्रासन	57. नटराजासन
58. कूर्मासन	59. धनुराकर्षणासन	60. वृश्चिकासन
61. मयूरासन	62. हनुमानासन	63. ब्रह्मचर्यासन
64. मूलबंधासन	65. गोरक्षासन	66. अष्टवक्रासन
67. हलासन	68. योगमुद्रासन	69. खगासन
70. ध्रुवासन	71. तुलासन	72. मण्डूकासन

73.	शुतुरमुर्गासन	74.	हंसासन	75.	जानुशिरासन
76.	हस्तपादगुप्तासन	77.	योगासन	78.	लता आसन
79.	पादतलसंयुक्त मूर्द्धा स्पर्शासन	80.	कन्दपीड़ासन	81.	समकोणासन
82.	नाभिपीड़ासन	83.	द्विकोणासन	84.	त्रिकोणासन

उपर्युक्त गिनाए गए चौरासी आसनों में से कुछ आसन ऐसे भी हैं, जिनके दो तीन या अधिक भेद होते हैं। जैसे - सूर्य नमस्कार दस क्रियाओं में सम्पन्न होता है। इन चौरासी आसनों की संख्या सौ से भी अधिक हो सकती है । अतः जहाँ प्रमुख आसनों के नाम ही गिनाए गए हैं, अन्य आसनों को छोड़ दिया गया है। किन्तु मनुष्य अपनी आवश्यकता एवं सुविधा के अनुसार उनका भी अभ्यास कर सकता है।

हठयोग प्रदीपिकाकार श्री स्वात्माराम योगी ने अष्टाँग कथन के अन्तर्गत आसन का कथन सर्वप्रथम किया है। आसन के अन्तर्गत उन्होंने कुछ प्रमुख निम्न आसनों का उल्लेख वर्णनपूर्वक भी किया है। जैसे - स्वस्तिकासन, गोमुखासन, वीरासन, कूर्मासन, कुम्कुटासन, उत्तनासन, कूर्मासन, धनुरासन, मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तन आसन, मयूरासन, शवासन, सिद्धासन, सिंहासन और भद्रासन। इन आसनों में से अंतिम चार आसनों को वे सर्वश्रेष्ठ मानते हैं - सिद्धासन, पद्मासन, सिंहासन और भद्रासन - ये चार आसन सर्वश्रेष्ठ हैं। इनमें से भी योगी सिद्धासन में सुखपूर्वक बैठ सकता है। [1]

यद्यपि हठयोग प्रदीपिका में केवल पन्द्रह आसनों का वर्णन है, किन्तु कुल आसनों की संख्या उन्हें भी ८४ ही अभीष्ट है। वे ८४ आसनों में से उपर्युक्त चार आसनों को श्रेष्ट मानते हैं। हठयोग में चार आसनों को सर्वश्रेष्ठ एवं विशेष उपयोगी

---

1. सिद्धं पद्म तथा सिंह भद्र चेति चतुष्टयम् ।
श्रेष्ठं तत्रापि च सुखे तिष्ठेत्सिद्धासने सदा ।। (हठ0 यो0 १/३६)

बतलाया गया है। इसका कारण सम्भवतः यह हो सवकता है कि इन चतुर्विध आसनों में योगी स्थिरता एवं सुखपूर्वक बैठ सकता है। योगियों को अभीष्ट सिद्धि अर्थात् परम ब्रह्म साक्षात्कार कराने में भी ये आसन ही अधिक उपयोगी होते हैं। योगियों के अतिरिक्त अन्य महा-पुरूष भी अधिकांशतः इन्हीं चार आसनों में से किसी एक आसन का आलम्बन लेकर अपनी साधना में तत्पर हुए और अन्त में कार्य सिद्धि में समर्थ हुए।

वर्तमान में सामान्यतः आसनों की संख्या ८४ है। योगशास्त्र तथा अन्य शास्त्रों में आसनों की संख्या ८४ लाख बतलाई गई है। इस संख्या का आधार सम्भवतः शास्त्रोक्त यह परिकल्पना है कि संसार में प्रत्येक योनि के जीव का आसन भिन्न होने से और शास्त्रों में जीव योनि की संख्या ८४ लाख होने से आसनों की कुल संख्या ८४ लाख होती है। ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि शिव जी ने प्रत्येक लक्ष योनि के आसनों में से एक-एक आसन छांटकर अभ्यास के लिए उन की संख्या 84 निर्धारित की। अतः प्रत्येक आसन एक-एक लाख योनि के जीवों का प्रतिनिधित्व करता है। शास्त्रों में इनका इतिहास ऐसा मिलता है। इस प्रकार आसनों की संख्या 84 है।

इन आसनों के दो प्रकार हैं - शरीर संवर्धनात्मक और ध्यान धारणात्मक। इन में शरीर संवर्धनात्मक आसन बैठने के नहीं होते। उन की अंतिम स्थिति में पहुँचने के लिए पृष्ठवंश तथा शरीर के षडंगों को मोड़ने और सीधा तानने की आवश्यकता होती है। इसलिए न को सिद्ध करने में तथा सिद्ध करने पर दीर्घकाल तक धारण करने में बहुत कष्ट होता है। इस प्रकार के आसन के अन्तर्गत शीर्षासन, शलभासन, सर्वांगासन, भुजंगासन, मयूरासन, पश्चिमोत्तानासन, धनुरासन, हलासन आदि आसनों का समावेश है। ये आसन शरीरसंर्वधनात्मक प्रकार के सुपरिचित उदाहरण हैं।

द्वितीय प्रकार के आसन ध्यानधारणात्मक होते हैं। ये आसन दीर्घकाल तक ध्यान धारणा करने के लिए होने से सरल और सुखप्रद हुआ करते हैं। ये आसन थोड़े अभ्यास से ही दीर्घकाल तक धारण किये जा सकते हैं। सिद्धासन और स्वस्तिकासन प्रमुख ध्यान धारणात्मक आसन हैं।

कहीं-कहीं तीन प्रकार से आसनों का अभ्यास किए जाने का उल्लेख मिलता है। खड़े होकर, बेठकर और लेटकर। तदनुसार सभी चौरासी आसनों को इन तीन प्रकारों में वर्गीकृत या विभाजित किया जा सकता है।

उपर्युक्त दोनों अथवा तीनों ही प्रकार के आसनों से यह स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग आसनों का अभ्यास व्यायाम के रूप में केवल शरीर के संवर्धन और पुष्टि के लिए तथा बलाधनार्थ करना चाहते हैं, उन्हें शरीरसंवर्धनात्मक आसनों का ही अभ्यास करना चाहिए। ये आसन शरीर के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं।

आसनाभ्यास से पूर्व कुछ आवश्यक बातें एवं निर्देश :

आसनों का अभ्यास करने से पूर्व कुछ आचरणीय बातों का ध्यान रखना भी परमावश्यक है, अन्यथा आसनों का पूर्ण लाभ और फल प्राप्त करना सम्भव नहीं। ऐसी स्थिति में आसनों का अभ्यास निरर्थक एवं अनुपयोगी सिद्ध होगा। वस्तुतः आसन हमारे लिए उपयोगी, प्रभावशाली और लाभकारी तब ही हो सकते हैं जब उनका विधिपूर्वक समुचित ढंग से यथावश्यक निर्देशों को ध्यान में रखते हुए और तत्सम्बन्धी नियमों का पालन करते हुए अभ्यास किया जाए। आसनों का अभ्यास चाहे योग साधना के लिए किया जाये अथवा स्वास्थ्य लाभ एवं रोग-मुक्ति के लिए किया जाए, आवश्यक निर्देशों और तत्सम्बन्धी नियमों का पालन करना परमावश्यक है। आसनाभ्यास करने से पूर्व एवं अभ्यास करते समय कुछ मुख्य बातों का ध्यान रखना आसनाभ्यासी के लिए आवश्यक है, जो निम्न प्रकार से है -

1. आसनों का अभ्यास करने से पूर्व मूत्राशय, मलाशय और आंतों को खाली कर लेना आवश्यक है। आसनाभ्यास के समय विबन्ध (कब्ज) की स्थिति होना ठीक नहीं है। प्रतिदिन आसनाभ्यास से पूर्व मलत्याग का एक निश्चित् समय निर्धारित कर लेना चाहिए । ऐसा करने से कुछ दिनों बाद निर्धारत समय पर स्वतः ही मलत्याग की इच्छा होने लगेगी। मल प्रवृति के लिए यथा सम्भव आँतों पर जोर न डाला जाये अपितु सम्पूर्ण शरीर को यूंही ढीला छोड़ देना चाहिए। शरीर को शिथिल करने से आंतों में स्वभावतः आकुञ्चन-प्रसारण की क्रिया होने लगेगी और कुछ सप्ताह पश्चात् आंतें स्वयं ही प्रतिदिन निश्चित् समय पर मलप्रवृति करने लगेंगी।

2. विबन्ध (मलावरोध या कब्ज) की स्थिति होने पर तीक्ष्ण विरेचक औषधियों के प्रयोग से बचना चाहिए। आसनों के अभ्यास के द्वारा ही विबन्ध को दूर करना चाहिए। इस के लिए दो तीन गिलास हल्का नमकीन पानी पीकर तिर्यक्, ताड़ासन, कटि चक्रासन तिर्यक्-भुजंगासन, उदराकर्षणासन आदि का अभ्यास अपनी सुविधानुसार करना चाहिए । इस से निश्चय ही कब्ज में राहत मिलेगी। इन आसनों के अभ्यास से यदि कोई विशेष लाभ लक्षित न हो तो पवनमुक्तासनों के अभ्यास का क्रम अपनाना चाहिए। यह अवश्य ही विबन्ध को दूर करने में सहायक सिद्ध होगा।

3. आसनाभ्यास करते समय पेट (आमाशय) का खाली रहना भी अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण है कि भोजन करने के लगभग चार घंटे बाद तक आसनाभ्यास नहीं करना चाहिए। प्रातःकाल शौच आदि आवश्यक क्रियाओं से निवृत होने के बाद आसनाभ्यास करना सब से अधिक अच्छा माना गया

है, क्योंकि उस समय पेट भी खाली रहता है और आंते भी खाली हो जाती हैं

4. आसनाभ्यास के समय केवल नासिका के द्वारा ही श्वासोच्छ्वास किया जाना चाहिए। यदि किसी आसन विशेष में इसके विपरीत निर्देश दिया गया हो तो तदनुसार ही अभ्यास करना चाहिए।

5. आसनों का अभ्यास ऐसे खुले हुए हवादार कमरे में करना चाहिए, जहाँ का वातावरण स्वच्छ, शांत और उपयुक्त हो। कमरे में निर्बाध रूप से शुद्ध और ताजी वायु का आवागमन रहना चाहिए, ताकि श्वास के लिए पर्याप्त रूप से प्राणवायु प्राप्त हो सके। कमरे में यथावश्यक प्रकाश-किरणें भी पड़ती हुई होनी चाहिए, ताकि वहाँ के वातावरण में जीवाणु संक्रमण की सम्भावना न हो। साथ ही, यथासम्भव कमरा पूर्णतः खाली होना चाहिए, जिस से अभ्यास करने में असुविधा या बाधा उत्पन्न न हो।

6. अभ्यास के समय कमरे में एकान्त होना आवश्यक है। ऐसा होने से अभ्यासी या योगी व्यक्ति दत्तचित्त होकर आसनों का अभ्यास कर सकता है।

7. आसनों का अभ्यास घर से बाहर किसी खुले हुए स्थान में भी किया जा सकता है। किन्तु वह स्थान ऐसा होना चाहिए जहाँ किसी प्रकार की गन्दगी, धुँआ या दूषित वायु का प्रवेश न हो। वह स्थान कोलाहल से रहित पूर्णतः एकान्त और शान्त होना चाहिए। इस दृष्टि से कोई सुन्दर बाग-बगीचा एक उपयुक्त स्थान है।

8. अभ्यास के समय भूमि पर अच्छा सा आसन विछा लेना चाहि जो पर्याप्त लम्बा-चौड़ा हो। अथवा कम्बल को चार पर्तों में मोड़कर भी आसन की

जगह विछाकर प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु मुलायम गद्देदार या हवा भरे हुए विछावन का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

9. अभ्यास करते समय किसी भी आसन के लिए जोर लगाना उचित नहीं है। सदैव तनाव की स्थिति से बचना चाहिए और मस्तिष्क चिन्ता से मुक्त होना चाहिए। अभ्यास के समय मानसिक शांति एवं स्थिरता भी अत्यन्त आवश्यक है।

10. आसनाभ्यास करने के लिए 'ब्रह्ममुहूर्त' का समय सर्वाधिक उपयोगी होता है। जो व्यक्ति किसी कारणवश ब्रह्ममुहूर्त में आसनाभ्यास न कर सकें उन्हें प्रातः 6 बजे से 7 बजे तक अभ्यास करना चाहिए। अन्यथा भोजन करने के बाद चार घंटे छोड़कर किसी भी समय अभ्यास किया जा सकता है।

प्रमुख आसन :

शाडिल्योपनिषद् में प्रमुख आठ आसनों का उल्लेख किया गया है जो इस प्रकार से हैं।

1. स्वस्तिक आसन
2. गोमुख आसन
3. पद्मासन
4. वीर आसन
5. सिंह आसन
6. भद्र आसन
7. मुक्त आसन
8. मयूर आसन

1. स्वस्तिक आसन :-

इस आसन का आकार विश्व प्रसिद्ध शुभ चिन्ह स्वस्तिक के समान होता है, इसलिये इसे स्वस्तिकासन कहते हैं। इसके अतिरिक्त स्वस्तिक का अर्थ है - सीधा । क्योंकि इस आसन में सीधा बैठा जाता है इसलिये इसे स्वस्तिकासन कहते हैं।

विधि :- भूमि पर बैठकर दोनों पैर मोड़कर जंघा और पिण्डलियों के बीच दोनों पंजों को इस प्रकार रखा जाये कि दोनों पंजे दोनों घुटनों के बीच आ जायें, तत्पश्चात् दोनों

हाथों को जंघाओं के अन्त में घुटनों के पास रखकर मेरुदण्ड सहित सम्पूर्ण शरीर को सीधा रखें। इस बात का ध्यान रखें कि घुटने भूमि से उठने न पायें। श्वास सामान्य होना चाहिए।[1]

स्वस्तिक आसन से लाभ -

यह अत्यन्त सरल आसन है। इस में काफी देर तक आराम से बैठा जा सकता है। इसलिए ध्यान आदि के लिए यह अत्यन्त उपयुक्त आसन है। इस के अतिरिक्त जिन व्यक्तियों के पैर बहुत ठंडे या गर्म रहते हों, पसीना अधिक आता हो, उन्हें इस आसन का नित्य अभ्यास करने से बहुत लाभ मिलता है।

2. गोमुख आसन :-

इस आसन में दोनों मुड़े हुए घुटने जो एक दूसरे पर चढ़े हुए होते हैं, गाय के मुख के समान और दोनों पैर गाय के कानों के समान दिखते हैं, इसलिए इस आसन को 'गोमुख' आसन कहते हैं।[2]

विधि :- भूमि पर एड़ी पंजों को मिलाकर आगे की ओर पैर फैलाकर बैठ जायें, फिर बायें पैर की एड़ी को दाहिनी जांघ के नितम्ब भाग के मूल में गुदा के पास लगाया जाये, अब दाहिनी जांघ को बाँयें पैर की पिंडली के ऊपर भार देते हुए घुटनों को मोड़कर बाँई जांघ के मूल से दाहिनी एड़ी को सटाकर लगाया जाये। इस बात का ध्यान रहे कि दोनों पैर के पंजे सीधे होकर जमीन से लगे रहें। इस अवस्था में दोनों पैर गाय के कानों के समान दिखाई देंगे, और घुटना, दूसरे के ठीक ऊपर होगा जो गाय के मुख के समान दिखाई देगा। फिर दाहिने हाथ को सीधे ऊपर उठाया जाये

---

1. ''जानूर्वोरन्तरे सम्यक्कृत्वा पादतले उभे।
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ।'' - शा0 उप0 १/२/१

2. ''सव्ये दक्षिणगुल्फं तु पृष्ठपार्श्वे नियोजयेत् ।
दक्षिणेऽपि तथा सव्यं गोमुखं यथा तत्प्रचक्षते ।।'' - शा0 उप0 १/३/२

और कोहिनी मोड़कर पीठ पर हाथ को रखा जाये। बायें हाथ को नीचे से मोड़कर दाहिने हाथ के पास लाया जाये और दोनों हाथों की उंगलियों को 'हुक' बनाते हुए जकड़ लिया जाये। रीड एवं गर्दन को सीधा रखें, इस में दृष्टि नासाग्र रहेगी अर्थात् दृष्टि को सामने रखें, स्वाभाविक व सामान्य रूप से श्वास लेते रहें। दो मिनट बाद पैर व हाथ दोनों की स्थिति को बदल लें।

गोमुख आसन से लाभ -

इस आसन के निरन्तराभ्यास करने से पांव, घुटने, कमर आदि को असीमबल की प्राप्ति होती है, जिससे इन अंगों से सम्बन्धित रोग नहीं होते। इस आसन से क्षयरोग में भी फैफड़ों का व्यायाम होने से लाभ मिलता है। फैफड़ों की सफाई होने से नाड़ीशोधन में सहयोग मिलता है। इस आसन से आक्सीजन अधिक मात्रा में खींचा जा सकता है। इस प्रकार यह आसन फैफड़ों के अनेकशः छिद्र जो बन्द पड़े रहते हैं, उन्हें खोल देता है जिस से कुम्भक प्राणायाम में बहुत सहायता मिलती है। अतः योगियों के लिए यह बहुत उपयोगी आसन माना गया है। टी0 बी0 जैसी बीमारी से मुक्ति के लिए अच्छा आसन है। जिन्हें नींद नहीं आने की बीमारी हो उन्हें सोने से पूर्व यह आसन करना चाहिए।

3. पद्मासन :-

इस आसन में शरीर की आकृति कमल के फूल जैसी हो जाती है, अतः इसे कमलासन भी कहते हैं।

विधि :- भूमि पर दोनों पैर फैलाकर बैठना चाहिए, फिर बायें पैर की एड़ी को दाईं जंघा पर रखें कि एड़ी नाभि के पास आ जाये। इस के बाद दायें पैर को उठाकर इस प्रकार रखें कि दोनों ऐड़ियाँ नाभि के पास आपस में मिल जायें। इस बात का ध्यान रहे कि दोनों घुटने जमीन से उठने न पायें। मेरूदण्ड सहित कमर से ऊपर का

शरीर का सम्पूर्ण भाग सीधा रखें। दोनों हाथों को दोनों घुटनों पर हथेली के बल अथवा हथेली (पंजा) चित्त पर करके तर्जनी अंगुली और अंगूठे को मिलाकर छल्ले की तरह बनाया जाये अथवा हथेलियों को जोड़ करके एक दूसरे के ऊपर गोद में रखें। दोनों हाथों को घुटनों पर रखने से गरिमा शक्ति की बृद्धि होती है, अर्थात् शरीर भारी होता है। दोनों हाथों को गोद में रखने से लघिमाशक्ति की वृद्धि होती है। [1] अर्थात् शरीर हल्का होता है। 2 - 2 मिनट कर पैरों को बदलकर अभ्यास करना चाहिए।

इस आसन में नासिका के द्वारा धीरे-धीरे पूर्ण पूरक करके यथाशक्ति कुम्भक करना चाहिए, पश्चात् रेचक करना चाहिए। कम से कम 5 बार यह क्रिया करके पैर की स्थिति बदलनी चाहिए, पुनः यही क्रिया दोहरायें।

पद्मासन से लाभ -

इस आसन का अभ्यास करने से सब प्रकार की व्याधियाँ दूर हरोती हैं। क्योंकि यह आसन कफ, पित्त और वायु को समावस्था में लाता है, जिस से पाचन शक्ति बढ़ती है, जांघ और घुटने की मांसपेशियों पर तनाव पड़ने से इनमें शक्ति आती है, रीढ़ की हड्डी यदि ढेड़ी हो तो धीरे-धीरे सीधी हो जाती है। आंतरिक अवयव हृदय, फेफड़े, आमाशय, प्लीहा, यकृत्, आन्त्र आदि स्वस्थ रहते हैं। अन्तःस्रावी ग्रान्थियां जैसे थाईराइड एवं पैराथाईराइड आदि ठीक से काम करती है। प्राणायाम, ध्यान, धारणा, समाधि आदि के लिए यह आसन सर्वोत्तम है।

1.क) वामोरूपरिदक्षिणं चरणं संस्थाप्यवामं तथा
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना कृत्वा धृत्वा कराभ्यां दृढम् ।
अङ्गुष्ठौ हृदये निधाये चिबुकं नाग्रमालोकये -
देतद्व्याधिकवनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते।। - हठ0 यो0 १/४४

ख) ऊर्वोरूपरि शण्डिल्य कृत्वा पादतले उभे। तदैव
पद्मासन भवेदेतत्सर्वेषामीप पूजितम् ।। - श0 उप0 १/३/३

इसके अतिरिक्त इस आसन का निरन्तराभ्यास करने से पैरों का सुन्न होना, पैरों का दुखना, पैरों में मोच आना, जंघा पृष्ठ मूल की नाड़ी सायटिका की विकृति के कारण होने वाली तीव्र वेदना आदि में लाभ होता है।

4. वीरआसन :-

एक जाँघ को एक पैर से मिलाकर दूसरी जांघ को दूसरे पैर से मिलाकर बैठना वीरासन कहलाता है।[1] यद्यपि यह आसन उक्त ग्रन्थों में सरल ढंग से वर्णित पाया जाता है, परन्तु जिस वीरासन को हनुमान जी ने अपनाया उसे केचन् विद्वान हनुमान-आसन भी कहते हैं उस का वर्णन इस प्रकार है -

विधि :- भूमि का आश्रय लेते हुए एड़ी पंजे मिलाकर सीधे खड़े हों। दोनों अंगूठों का अन्दर ले जाते हुए मुट्ठी बन्ध रखें तथा दायें हाथ को सामने सीधा रखें तथा बाँयें हाथे को 60^0 कोण बनाते हुए मोड़े जो हाथ मोड़ा हुआ है वही पैर का पंजा पीछे की ओर खींचते हुये पीछे फैला लें और जो हाथ सीधा है वह हाथ मोड़कर रखें। और अपने शरीर पर तनाव लाते हुये वीरभाव धारण करते हुये, पीछे की ओर मुड़ें। यह आसन दोनों पैर बदलकर करें।

वीरासन से लाभ -

इस आसन के निरन्तराभ्यास के साहस, धैर्य और शक्ति का आगमन होकर अनिद्रा तथा अतिनिद्रा जैसे रोगों से मुक्ति मिलती है। लक्ष्मणजी ने वनगत राम की सुरक्षा हेतु यह आसन लगाया था। यह आसन धनुर्विद्या तथा शिकार करने वालों के लिये भी उपयोगी माना जाता है।

---

1. एकं पादमथैकमिन विन्यस्योरुणि संस्थितः ।
   इतरस्मिस्तथा चोरूं वीरासनमुदीरितम् ।। - शा0 उप0 १/३/४
2. एकं पादं तथैकस्मिन्विन्यसेदूरुणि स्थितम् । तदैव
   इतरस्मिंस्तथा चोरूं वीरासनमितीरिम् ।। - हठ0 यो0 १/२१

5. सिंह आसन :-

दाहिने गुल्फ के साथ बांये गुल्फ को और बांये गुल्फ के साथ दांये गुल्फ को लगाकर बैठना, दोनों हाथों को दोनों जानुओं पर रखना, दोनों हाथों की अंगुलियों को फैलाये रखना। फिर भली प्रकार एकाग्र होकर प्रसन्न मुख से नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि रखना, इसे सिंहासन कहते हैं। और योगीजन सदा इस की प्रशंसा करते हैं।[1]

सिंहासन से लाभ -

इस आसन के निरन्तर अभ्यास से ब्रह्मचर्यरक्षण में सहयोग मिलता है। मुख, दांत, जिह्वा, जबड़ा और गले, पैरों की पिण्डलियों पर जोर पड़ने के कारण इन अंगों से सम्बन्धित रोगों से मुक्ति मिलने में सहयोग मिलता है। सिंह-भावना आती है अर्थात् जिस से हृदय में वीरता एवं बल का सुयोग आकर डर भाग जाता है। इस आसन में मूलबन्ध, जालन्धर एवं उड्डिानबन्ध स्वयमेव लग जाते हैं जिस से आसन लाभकारी माना गया है।

6. भद्रासन :-

लिंग के नीचे की सीवन पर दोनों गुल्फों को जमाकर रखने और हाथों से पैरों के दोनों पार्श्वों को दृढ़तापूर्वक पकड़कर निश्चलतापूर्वक बैठने से भद्रासन होता है जो

1.क) दक्षिणं सव्यगुल्फेन दक्षिणेन तथेतरम् ।
हस्तौ च जान्वोः संस्थाप्य स्वाङ्गुलीश्च प्रसार्य च ।।
वयक्तवक्त्रो निरीक्षेत नासाग्रं सुसमाहितः ।
सिंहासनं भवेदेतत् पूजितं योगिभिः सदा ।। (शा0 उप0 ३/५/६)

ख) गुल्फौ च वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् ।
दक्षिणे सण्यगुल्फं तु दक्षगुल्फं तु सण्यके ।।
हस्तौ तु जान्वोः संस्थाप्य स्वांगुलीः संप्रसार्य च ।
व्यात्तवक्त्रो निरीक्षेत नासाग्रं सुसमाहितः ।।
सिंहासनं भवेदेतत्पूजितं योगिप्रंगवैः ।
वंधत्रितयसंधान कुरूते चासनोत्तमम् ।। (हठ0 यो0 प्र0 का0 १/५०-५२)

सभी रोगों और विष आदि का नाश करने वाला है।[1]

भद्रासन से लाभ -

भद्रासन कई बीमारियों में लाभप्रद सिद्ध हुआ है। विशेषकर इसके अभ्यास से जंघा, घुटने, एड़ी, पिण्डलियों, पदपंजों को असीम बल मिलता है। मेरुदण्ड सीधे करने में बहुत सहायता मिलती है। फेफड़ों के लिये भी आसन लाभदायक है। क्षय से सम्बन्धित रोग इस आसन के निरन्तराभ्यास से नष्ट होते हैं। मानसिक एकाग्रता के लिये यह आसन लाभप्रद है। इस में दृष्टि भ्रूमध्य रहती है।

हठयोग प्रदीपिका में इस भद्रासन का दूसरा नाम योगियों द्वारा गोरक्षासन भी स्वीकार किया गया है। सिद्ध योगीपुरुष इसी आसन को गोरक्षासन भी कहते हैं। इस आसन को बाँधने से श्रम नष्ट हो जाता है। नाड़ीशुद्धि की इच्छावाला साधक मुद्रादि के द्वारा वायु का अभ्यास करे। आसन, विभिन्न कुम्भक तथा मुद्रा नामक करण का भी साधन करें।[2]

7. मुक्तासन :-

बाँयें पाँव की एड़ी को गुदा के पास लगाकर दाँयें-पाँव को बाँए पाँव पर इस प्रकार रखें कि बाँयें पाँव की एड़ी अण्डकोष के नीचे ही रहे। शरीर को भी सीधा रखते हुये दोनों हाथों को गोद या घुटनों पर रख सकते हैं। अर्थात् सूक्ष्म सीवन को

1.क) गुल्फौ तु वृषणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपेत् ।
पादपार्श्वे तु पाणिभ्यां दृढं बद्ध्‌ध सुनिश्चलम् ।
भद्रासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविषापहम् ।। (शा० उप० १/३१८)

ख) गुल्फौ च बृणस्याधः सीवन्याः पार्श्वयोः क्षिपते् ।
सव्यगुल्फं तथा सव्ये दक्षगुल्फं तु दक्षिणे ।। - तदैव
पार्श्वपादौ च पाणिभयां दृढं बद्धूवा सुनिश्चलम् ।
भद्रानं भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशनम्।। (हठ० यो० १/५३-५४)

2. गोरक्षासन मित्याहुरिदं वै सिद्धयोगिनः ।
एवमासनबन्धेषु योगिन्द्रो विगतश्रमः ।।
अभ्यसेन्नाडिकाशुद्धि मुद्रातिपवन क्रियाम् ।
आसनं कुम्भकं चित्रं मुद्राख्यं करण तथा।। (हठ० यो० १/५५-५६)

दायी तरफ से गुल्फ द्वारा दबाकर दाँयें गुल्फ से दबागुल्फ से दबा कर रखना 'मुक्तासन' कहलाता है।[1]

मुक्तासन से लाभ –

इस आसन का निरन्तराभ्यास करने से वे समस्त लाभ प्राप्त होते हैं जो सिद्धासन से होते हैं। जिन का सिद्धासन न लग सके तो वे मुक्तासन से भी लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

8. मयूरासन :-

इस आसन में मनुष्य की स्थिति मयूर के समान होती है, इसलिए इसे मयूरासन कहते हैं। इस आसन में हाथ की दोनों हथेलियों को जमीन पर टिका कर रखना और दोनों कोहनियों को नाभि के दोनों तरफ दबाकर बैठना, फिर माथे और पैरों को ऊपर उठाकर लकड़ी के समान आकाश में अधर रखना मयूरासन है जो सर्व पापों का नाश करने वाला है।[2]

विधि :- पहले एड़ियों के बल भूमि पर बैठ जायें। फिर दोनों घुटने आगे झुकाकर भुमि पर टिकायें तथा दोनों हाथ भूमि पर इस तरह से रखें कि दोनों पंजे मिले हुए पीछे की ओर रहें। घुटनों की ओर अंगुलियाँ करके घुटनों से हथेलियाँ एक हाथ अन्तर भूमि पर रखें। दोनों कोहनियों को मिलाकर नाभि के पास लगाया जाये तथा आगे की ओर झुकते हुए दोनों को मिलाते हुए पीछे की ओर ताना जाये एवं छाती

---

1. सम्पीड्य सीवनीं सूक्ष्मां गुल्फेनैव तु सव्यतः ।
सव्यं दक्षिपाणगुल्फेन मुक्तासनमुदीरितम् ।। (शा० उप० ३/९)
2. अवष्टभ्य धरां सम्यक् तलाभ्यां तु करद्वयोः ।
हस्तयोः कूपरौ चापि स्थापेन्नाभिपार्श्वयोः ।।
समुन्नतशिरः पादौ दण्डवद् व्योम्नि संस्थितः।
मयूरासनमेतत्तु सर्वपापप्रणाशेनम् ।।
शरीरान्तर्गता सर्वरोगा विनश्यन्ति ।
विषाणि जीर्यन्ते । (शा० उप० ३/१०-११)

तथा सिर पर जोर डालते हुए पैरों को धीरे-धीरे भूमि से ऊपर उठाने का प्रयास करें। इस से उदर पर दबाव पड़ेगा और सम्पूर्ण शरीर का भार कोहनियों पर आ पड़ेगा। जब पैर कोहिनियों के बराबर आ जाएं तब सिर और छाती को सीधा किया जाये अर्थात् सम्पूर्ण शरीर हाथों की कोहनियों पर साध कर स्थिर रखें। शरीर भूमि के समानान्तर हो दृष्टि सामने रहे, कई बार शरीर का भार न सम्भलने के कारण मुँह को चोट लग सकती है। अतः इस आसन का अभ्यास सावधानीपूर्वक करना चाहिए। इस आसन का अभ्यास करते समय ठोड़ी के नीचे नर्म तकिया रखा जा सकता है।

मयूरासन से लाभ -

यह आसन गुल्म, उदररोगादि सभी रोगों को नष्ट करता है। अधिक खाये गये अन्न को भस्म करने तथा जठराग्नि को प्रदीप्त करने में कालकूट के समान है।[1]

बदहजमी, कब्ज, वायु, गुल्मादि पेट सम्बन्धी रोग पाचन क्रिया सम्बन्धी बीमारियाँ, प्लीहा, यकृत, नेत्रविकार, दमा, बात, पित्त, कफ आदि रोगों से मुक्ति मिलती है। इस आसन के अभ्यास से विष तक पाचन करने की शक्ति मिल जाती है।

विभिन्न व्याधियों में उपयोगी आसन :-

क्रमांक	व्याधियाँ	आसन
1.	मन्दाग्नि के लिए उपयुक्त आसन इस प्रकार से हैं -	उत्तानपादासन, सर्वांगासन, हलासन, पश्चिमोत्तासन, शीर्षासन और धनुरासन।
2.	'विबन्ध' के लिये उपयुक्त आसन -	उत्तानपादासन, सर्वांगासन हलासन, पश्चिमोत्तनासन, भुजंगासन, धनुरासन, मयूरासन और शीर्षासन।

---

1. हरति सकलरोगानाशु गुल्मोदरादीनभि भवति च दोषाानासनं श्रीहमयूरम्
बहु कदशनभुक्त भस्म कुर्यादशेषं, जनयति जठराग्निं जारयेटकालकूटम् ।। (हठ0 यो0 १/३१)

3.	'अजीर्ण' के लिए उपयुक्त आसन	पवनमुक्तासन, सर्वांगासन, हलासन, उत्तानपादासन, पश्चिमोत्तानासन, धनुरासन, सुप्तवज्रासन और शीर्षासन।
4	'जठराग्नि' में उपयुक्त आसन -	सर्वांगासन, शीर्षासन, भुजंगासन, मत्स्यासन, वज्रासन, सुप्तवज्रासन, मयूरासन और मत्स्येन्द्रासन।
5	पेट की बीमारियों में उपयोगी आसन-	उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन, वज्रासन, योगमुद्रासन, भुजंगासन और मत्स्यासन ।
6	'गैस' की बीमारियों में उपयोगी आसन -	पवनमुक्तासन, जानुशिरासन, खगासन, योगमुद्रासन और वज्रासन।
7.	'अर्श' की बीमारियों में उपयोगी आसन -	उत्तनासन, सर्वांगासन, मयूरासन, शीर्षासन और यानासन।
8.	'स्वप्नदोष' -	पादांगुष्ठासन, गोरक्षासन, लोलासन, कन्दपीडनासन, शीर्षासन, वज्रासन, सुप्तवज्रासन और सर्वांगासन।
9.	आन्त्रपुच्छशोथ -	उत्तानपादासन, सर्वांगासन और शीर्षासन ।
10.	शीत या श्लेष्म विकास -	मत्स्यासन, सर्वांगासन, हलासन, कपालभाति, (प्रतिश्याय) उड्डियानबंध और गजकरणी।
11.	फुफ्फुस विकृति -	वज्रासन, मत्स्यासन और सर्वांगासन।
12.	श्वासरोग (दमा) -	एक नासिका घर्षण, मत्स्यासन, सर्वांगासन, सुप्तवज्रासन, भुजंगासन, शीर्षासन, उड्डियानबंध, गजकरनी और धौति।
13.	कुष्टरोग -	धौतिासन, गजकरणी, शीर्षासन और महामुद्रासन।

14.	आन्त्रच्युति -	शीर्षासन, सर्वांगासन और कपालभाति ।
15.	रक्तविकास और त्वक् रोग -	गजकरणी सर्वांगासन और कपालभाति।
16.	आमवात (गंठिया) -	सर्वांगासन, पवनमुक्तासन, पद्मासन, मत्स्यासन, उष्ट्रासन, वज्रासन, सुप्तवज्रासन और पश्चिमोत्तानासन।
17.	रजोविकृति -	भुजंगासन, शलभासन, मत्स्यासन, सर्वांगासन और पश्चिमोत्तानासन। (गर्भावस्था और ऋतुकाल में आसनाभ्यास वर्जित है)
18.	योषापस्माट और अनिद्रा -	शीर्षासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, पश्चिमोत्तनासन, उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन, हलासन, भुजंगासन, शलभासन और मयूरासन।
19.	मधुमेह -	सर्वांगासन, मयूरासन, नौकासन, वज्रासन, भुजंगासन, हलासन पश्चिमोत्तनासन, शीर्षासन और उड्डियानबंध।
20.	वीर्य दोष -	सर्वांगासन, वज्रासन, योगमुद्रासन ।
21.	सिर की बीमारियों में -	सर्वांगासन, शीर्षासन और चन्द्रासन ।
22.	गले की बीमारियों में -	सुप्तवज्रासन, भुजंगासन और चन्द्रासन ।
23.	आँख की बीमारी में -	सर्वांगासन, शीर्षासन और भुजंगासन ।
24.	नाभि विकृति -	धनुरासन, नाभिआसन और भुजंगासन ।
25.	गर्भाशय विकृति -	उत्तानासन, भुंगासन, सर्वांगासन, ताड़ासन, चन्द्रनमस्कारासन।

26.	कटि शूल –	हलासन, चक्रासन, धनुरासन और भुजंगासन।
27.	यकृत् विकृति –	लता आसन, पवनमुक्तासन और यानासन ।
28.	भगंदरादि में –	उत्तनापादसन, सर्वांगासन, यानासन, जानुशिरासन, और नमस्कारासन ।

<u>**सभी रोगों में सामान्य आसन**</u> – पद्मासन, शीर्षासन, सर्वांगासन और पश्चिमोत्तनासन।

स्वास्थ्य एवं दीर्घायुष्य के लिए उपयुक्तासन – पद्मासन, शीर्षासन और पश्चिमोत्तानासन ।

यौवन रक्षा हेतु उपयोगी आसन – सर्वांगासन, शीर्षासन, भुजंगासन, पश्चिमोत्तनासन और मत्स्यासन।

'मेधाशक्ति' – सर्वांगासन, शीर्षासन, मत्स्यासन, पद्मासन, प्राणायाम और ध्यान ।

ज्ञान तन्तुओं की क्षमता बढ़ाने वाले उपयोगी आसन – सर्वांगासन, शीर्षासन, भुजंगासन, शलभासन और धनुरासन ।

'शिथिलीकरण' – शवासन ।

अध्याय - चतुर्थ

चतुर्थ अध्याय

नाड़ियाँ, संख्या, उन की शुद्धि एवं उनमें वायु संख्या स्थान और शरीर में कार्य :

मानव शरीर माता-पिता के और से निर्मित माना जाता है जिसमें पञ्च स्थूलभूतों (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) पञ्च प्राण (प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान) की प्रधानता रहती है। मानव शरीर के कंकाल में सुश्रुतमतानुसार ३०० हड्डियाँ और चरकमतानुसार तीन सौ छः हड्डियाँ हैं। इन हड्डियों में खोपड़ी और मेरुदण्ड या पीठ के रीढ़ की २६ टुकड़ों वाली हड्डी मुख्य है। मेरुदण्ड या रीढ़ की २६ हड्डियों का अंश कुछ खोखला है जो कि नाड़ी द्वारा बंधा रहता है।

मानव शरीर की समस्त नाड़ियाँ सम्बद्ध होकर शरीर में फैली हैं । जीवरस के आश्रित नाड़ियाँ मानसिक तथा कर्म शक्ति का वहन करती हैं - जैसे प्राण शरीर की रक्षा करता है, उसी तरह हरे, नीले, लाल और श्वेत रंग की नाड़ियाँ, रक्त से पूर्ण हो, प्रक्षेप-विक्षेप से विकसित एवं संकुचित होकर शरीर की रक्षा करती हैं।

ये नाड़ियाँ जाल की तरह ऊपर नीचे तिरछी हो कर मनुष्य के सर्वांग में व्याप्त हैं। अथर्ववेद में इन नाड़ियों की संख्या ७२ हजार है। इन ७२०० नाड़ियों में से ७२ नाड़ियाँ मुख्य बताई गई हैं। इसी प्रकार कठोपनिषद् में मनुष्य के हृदय स्थल में नाड़ियों की संख्या १०१ बताई गई हैं उन में एक (सुषुम्णा) सिर की ओर (ब्रह्मन्ध्र की ओर) निकली हुई हैं उस से ऊपर जाता हुआ (जीवमुक्त होकर) अमरता को प्राप्त होता है। अन्य नाड़ियाँ प्राणों के निकलते समय चारों ओर भिन्न-भिन्न मार्गों से जाती हैं। [1]

---

1. शतं चैका च हृदयस्य नाड़यस्तासां मूर्धानमभिनिः सृतैका।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ्ऽन्या उत्क्रमणे भवन्ति ।। (कठो0 उप0 अ0 २ म0 १६)

इस शरीर में जीव प्राण के ऊपर आरूढ़ हुआ है तात्पर्य यह है कि बिना प्राण के शरीर का कोई अस्तित्व नहीं। मानव शरीर में नाभि की बगल में नीचे-ऊपर कुण्डलिनी का स्थान है। यह कुण्डलिनी शक्ति आठ प्रकृति रूप और आठ प्रकार से कुण्डल किये हुये हैं। केन्द्र में रहने वाली कुण्डलिनी का आश्रय लेकर चौदह मुख्य नाड़ियाँ हैं। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, सरस्वती, वारुणी, पूषा, हस्तजिह्ना, यशस्विनी, विश्वोदरी, कुहू, शंखिनी, पयस्विनी, अलंबुसा और गांधारी ये चौदह मुख्य नाड़ियाँ हैं। 'शाडिल्योपनिषद्' में प्राणतरंग का (Impulse) वहन करने वाली केवल चौदह मुख्य नाड़ियों के नाम गिनाये गये हैं।[1]

1. इड़ा नाड़ी (Left gangliated chord) यह मेरुदण्ड के बाहर, अन्त में नीचे वायीं तरफ (मूलाधार चक्र के त्रिकोण की बायीं तरफ) से प्रारम्भ होकर बायीं नाक में समाप्त हो जाती है तथा इस का प्रवाह ऊपर को है।

2. पिङ्गला नाड़ी (Right gangliated chord) यह मेरुदण्ड के बाहर नीचे दाहिनी तरफ (मूलाधार चक्र के त्रिकोण की दाहिनी तरफ) से प्रारम्भ होकर दाहिनी नाक में समाप्त हो जाती है तथा इसका प्रवाह ऊपर की तरफ रहता है।

3. सुषुम्णा नाड़ी (Spinal chord) यह मेरुदण्ड को पिरोये उस के मध्य से प्रारम्भ होकर ब्रह्मरन्ध्र (मस्तिष्क के अन्दर) पर्यन्त मृणालतन्तु के समान सूक्ष्म और ज्वाला सी उज्जवल प्रकाशमान परा नाडी है और इसी के अन्दर षट्चक्र है, जिन के द्वारा अखण्ड ब्रह्मानन्द पद मिलता है। ये तीन नाड़ियाँ (1) इड़ा (2) पिङ्गला (3) सुषुम्णा मूलाधार में जो अण्डक त्रिकोण है, उसी में से प्रारम्भ होती हैं और इन्हीं में से प्राण की तरंगों का मार्ग है।

---

1. इड़ा पिङ्गला सुषुम्ना सरस्वती वारुणी पूषा
हस्तिजिह्ना यशस्विनी विश्वोदरा कूहूः शंखिनी
पयस्विनी अलम्बुसा गान्धारीति नाडयचतुर्दश भवन्ति। (शा० उप० अ० 1 4/9)

इसी सुषुम्णा नाड़ी को पृथक्-पृथक् योग ग्रन्थों में शून्य पदवी, ब्रह्मरन्ध्री, महापथी, शाम्भवी, शमशानी इत्यादि नाम से कहा है। योगशिखोपनिषद् में सुषुम्णा के विषय में कहा गया है कि सुषुम्णा ही परम तीर्थ है, सुषुम्णा ही परा जप है, सुषुम्णा ही परम ध्यान है और सुषुम्णा ही से परागति होती है। इसी सुषुम्णा नाड़ी के अन्दर वज्रा नाड़ी है। वज्रा, चित्रा तथा ब्रह्म नाड़ियाँ मृत्यु होने पर अदृश्य हो जाती हैं।

सुषुम्णा के पीछे की तरफ सरस्वती नाड़ी है और पार्श्व में कुहू नाड़ी है (Pubic Nerve) यशस्विनी (Left acoustic nerve) और कुहू के मध्य वारुणी नाड़ी रहती है। पूषा (Right acoustic nerve) और सरस्वती के बीच पयस्विनी नाड़ी है। गाँधारी नाड़ी (Left ocular motor nerve) और सरस्वती के बीच यशस्विनी नाड़ी है। कन्द के मध्य में अलम्बुसा (Pharyngeal nerve) है सुषुम्णा के पूर्व भाग में लिंग तक कुहू नाड़ी है। कुण्डलिनी के नीचे और ऊपर वारुणी नाड़ी चारों तरफ गई है। यशस्विनी और सौम्या पैर के अंगूठे तक गई है। पिंगला के पीछे बाँयी आँख तक पूषा नाड़ी है। यशस्विनी नाड़ी बायें में है। जीभ के ऊपर के भाग तक सरस्वती नाड़ी है। बायें कान तक ऊपर जाने वाली शंखिनी नाड़ी है। इड़ा के पिछले भाग में बायें नेत्र तक जाने वाली गांधारी है। गुदा के मूल से नीचे-ऊँचे जाने वाली अलम्बुसा है।

इन चौदह नाड़ियों में अन्य नाड़ियाँ भी हैं। उन में भी अन्य ऐसी बहुत सी नाड़ियाँ हैं, जैसे पीपल आदि के पत्ते शिराओं (केशों) से व्याप्त होते हैं वैसे ही शरीर भी नाड़ियों से व्याप्त है।

नाड़ियों में वायु संख्या, स्थान एवं कार्य -

सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहने वाली नाड़ियों में घूमने वाली वायु की संख्या दस है, जिनके नाम स्थान एवं कार्य निम्न प्रकार से हैं - प्राण, अपान, समान, उदान,

व्यान, नाग, कुर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय - ये दश वायु सब नाड़ियों में घुमती है।[1]

दश वायु (प्राणों) का स्थान एवं प्रमुख कार्य -

	नाम	स्थान	कार्य
1.	प्राण	मुख से हृदय तक	रक्त संचार, भूख प्यास आदि।
2.	अपान	नाभि से पैरों तक	रोगोत्पादक दूषित वायु को बाहर करना, कटि से पैरों तक के अंगों को गति देना ।
3.	समान	हृदय से नाभि तक (7200 नाड़ियों के मार्ग में चलता है)	भोजन से प्राप्त रस को यथावत् वितरित करना,नाड़ी मण्डल एवं मस्तिष्क का पोषण ।
4.	उदान	कण्ठ से शिर तक	शरीर को उठाए रखना, मरण काल में शरीर से उत्क्रमण में सहायता करना।
5.	व्यान	सम्पूर्ण शरीर	ज्ञानवाहक स्थूल - सूक्ष्म नाड़ियों को गतिशील बनाना।
6.	नाग	मुख में	डकार, वमन एवं हिचकी लेना।
7.	कूर्म	पलकों में	नेत्र खोलना तथा झपकना।
8.	कृकल	कण्ठ	भूख-प्यास जनक ।
9.	देवदत्त	नासिका	जम्भाई, छींक लाना।
10.	धनञ्जय	समस्त शरीर	गमनागमन में सहायक

---

1. प्राणापानसमानोदानयाना नागकूर्मकृकलदेवदत्त धनञ्जया -- । (शा0 उप0 अ0 १ ४/११)

<u>नाड़ि शुद्धि</u> :- सम्पूर्ण रूप से विद्याभ्यास करने वाले पुरूष को यम-नियम से युक्त होकर सर्वसंग का त्याग कर सत्धर्म में तत्पर रहना चाहिए। क्रोध को जीतकर

गुरुसेवा में तत्पर रहकर और माता-पिता की आज्ञा की अवहेलना न करके, उत्तम सदाचार को जानने वाले गुरु के पास से शिक्षा प्राप्त करके फल, मूल और जल वाले तपोवन में निवास करना चाहिए। वहाँ वेदान्त का श्रवण करते हुए पुरूष को योगाभ्यास आरम्भ करना चाहिए। योगाभ्यास के लिये बनाया गया आसन न तो बहुत ऊँचा हो, न नीचा, न बहुत लम्बा हो, न चौड़ा। उस आसन पर बैठकर योगाभ्यासी को गर्दन तथा मस्तक को सीधा रखकर नासाग्र पर दृष्टि रखनी चाहिए, फिर वारह मात्रा से वायु इड़ा नाड़ी द्वारा खींचकर उसे पेट के भीतर रहने वाले, ज्वालाओं से युक्त रेफ और बिन्दु सहित ऐसे अग्नि मण्डल के साथ संयुक्त कर ध्यान करना चाहिए। फिर पिंगला नाड़ी द्वारा वायु को बाहर निकालना, फिर, पिंगला से वायु भरकर कुम्भक करके इड़ा से बाहर निकालना चाहिए। इस प्रकार सात, तीन या चार महीनों तक तीनो सन्ध्या समय तीन-तीन या चार-चार बार और उनके मध्य में छः बार अभ्यास करने से नाड़ी शुद्धि हो जाती है।

योगी को आसन पर दृढ़ होकर जितेन्द्रिय बनकर तथा हितकारी मिताहारी बनकर सुषुम्णा नाड़ी में रहने वाले मल को सुखाने के लिए योग करना चाहिए । उस समय प्रथम इड़ा नाड़ी से प्राण को भरकर कुम्भक करके दूसरी पिंगला नाड़ी से रेचक करना चाहिए । फिर पिंगला से पूरक करके कुम्भक करते हुए इड़ा से रेचक करना चाहिए। इस विधि से सूर्य-चन्द्र की नाड़ी द्वारा प्राणायाम का नित्य अभ्यास करने से योगी की समस्त नाड़ी तीन महीने में शुद्ध हो जाती है। जिस प्रकार सिंह, हाथी या बाँध को धीरे-धीरे वश में किया जाता है उसी प्रकार वायु की धीरे-धीरे साधना करने से वह वश में आ जाती है। उल्टी रीति से चलने पर वही वायु साधक का नाश कर

देती है।

इस प्रकार शक्तिअनुसार रेचक कुम्भक करने से ही लाभ मिलता है। क्योंकि यथेष्ट शक्ति के अनुसार वायु का कुम्भक करने से अग्नि प्रदीप्त होती है और नाड़ियाँ शुद्ध होने से नाद-श्रवण होता है तथा आरोग्यता मिलती है। विधिपूर्वक प्राणायाम करने से नाड़ियों का समूह शुद्ध होता है।

सुखासन पर बैठकर दाहिनी नाड़ी से बाहर का वायु खींचकर केश से लेकर पैर के नख की नोंक तक में रोककर (कुम्भक करके) बांयी नाड़ी से बाहर निकालना अर्थात् (रेचक करना) इस प्रकार के अभ्यास से कपालशुद्धि होती है। और वायु की नाड़ियों में रहने वाले सब रोगों का पूर्णतः नाश होता है। कुम्भक दो प्रकार का है - सहित और केवल । जो कुम्भक रेचक और पूरक से युक्त हो वह सहित कुम्भक है और उन से रहित केवल कुम्भक है। जबतक 'केवल' सिद्ध हो तब तक सहित कुम्भक का अभ्यास करना चाहिए। 'केवल' कुम्भक सिद्ध हो जाने पर योगी के लिए तीनों लोकों में कुछ भी प्राप्त करना दुर्लभ नहीं रहता। 'केवल' कुम्भक के अभ्यास से कुण्डलिनीशक्ति जाग्रत होती है, जिस के फलस्वरूप योगी पतले शरीर वाला, प्रसन्न मुख वाला, निर्मल नेत्र वाला, नाद श्रवण करने वाला, सभी रोगों से रहित बिन्दु को जीतने वाला और प्रज्जवलित जठराग्नि वाला होता है।

योगाभ्यासी को नाड़ी स्थान, वायु स्थान तथा उनके कार्यों को भली प्रकार समझकर नाड़ी की शुद्धि करनी चाहिए। अन्यथा का इस का विपरीत परिणाम हो सकता है।

अध्याय - पंचम

पञ्चम अध्याय

आधुनिक युग में योग एवं योगासनों की उपयोगिता :

आधुनिक भौतिकवादी प्रगतिशील वैज्ञानिक युग में भारतवासियों का जीवन द्रुतगति से विलासिता की ओर बढ़ता जा रहा है। विभिन्न प्रकार के श्रमसाधनों से हटकर मशीनों तथा अन्य भौतिक साधनों पर हमारा जीवन अधिक निर्भर होता जा रहा है। कृत्रिमता आज हमारे जीवन में इस तरह से व्याप्त हो गई है कि हमारे रहन-सहन का ढंग, हमारा आचरण, हमारा व्यवहार, हमारे खाने पीने की आदतें, सब कुछ कृत्रिम हो गई हैं। इस प्रकार वर्तमान युग में हमारा जीवन प्रकृति से हटकर कृत्रिम होता जा रहा है। जीवन का नैसार्गिक सौंन्दर्य एक प्रकार से नष्ट हो गया है। हमारे दैनिक भोजन में प्राकृतिक तत्त्वों का स्थान कृत्रिम रसायनों और तज्जनित मिश्रणों ने ले लिया है, जिस का दूषित और घातक प्रभाव हमारे शरीर, मन और मस्तिष्क को प्रभावित किए बिना नहीं रहता। भौतिकवाद की चकाचौंध में हम अपने हिताहित को भी खो बैठे हैं और आँख बंद कर मीठे जहर को आत्मसात् करते जा रहे हैं। इसके दूरगामी और कालान्तर भावी अनेक परिणाम हमारे सम्मुख विद्यमान हैं। किन्तु फिर भी विलासिता के क्षणिक सुखों में डूबा हुआ हमारा जीवन वेसुध है। श्रम विहीन, आलस्य पूर्ण विविध विधियाँ आज हमारे जीवन की मुख्य अंग बनी हुई हैं। ऐसी स्थिति में योग की क्या उपयोगिता है ? यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। क्या योग के द्वारा हमारे आधुनिक विलासितापूर्ण जीवन में परिवर्तन लाया जा सकता है ? इस का सीधा सा उत्तर है कि योग हमारे शरीर, मन और मस्तिष्क को प्रत्यक्षतः प्रभावित करता है। अतः योग द्वारा निश्चित् ही जीवन की वर्तमान धारा को बदला जा सकता है और जीवन में प्राकृतिक स्वास्थ्य और सौंदर्य का सुखमय प्रवाह प्रवाहित किया

जा सकता है।

योगासनों की उपयोगिता -

वर्तमान समय में अनेक प्रकार की सुख सुविधाएं विभिन्न प्रकार की भौतिक साधन-सामग्री होते हुए भी आज का मनुष्य पहले की अपेक्षा अधिक रोगग्रस्त है। आज मनुष्य को पहले की अपेक्षा अधिक धन एवं चिकित्सा सुविधा उपलब्ध है, फिर भी विभिन्न प्रकार के रोग उसे घेरे हुए हैं। इसका मूल कारण है हमारा आधुनिक विलासिता पूर्ण जीवन और हमारे दैनिक भोजन में प्राकृतिक तत्त्वों का ह्रास या अभाव। यदि योगासनों का अभ्यास निरन्तर किया जाये तो उन दोनों ही कारणों का निवारण स्वतः ही हो जाता है। योगासन मानसिक तनाव को दूर करने का एक अपूर्व साधन है। कुण्ठा और निराशा से आपूरित का मानव जीवन के लिए योगासन अमुल्य वरदान की भाँति हैं।

योगासनों के सतत अभ्यास के आधुनिक सभ्य जीवन के कब्ज, गंठिया, जकड़न, हृद्रोय, तनाव, दुश्चिन्ता, कुण्ठा, निराश, स्नायु शैथिल्य, वायु विकार (गैस) आदि अनेक रोगों से सहज ही मुक्ति पा सकता है। वह अपने शरीर में अधिक शक्ति और स्फूर्ति का अनुभव कर सकता है। योगासनों का सतत अभ्यास करने वाला मनुष्य अधिक सतर्कतापूर्वक जीवन के प्रति अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सकता है और अधिक सक्षमतापूर्वक शारीरिक एवं मानसिक समस्या का हल करने में समर्थ हो सकता है।

वर्तमान समय में मानव सभ्यता के विकास के साथ-साथ मानव जीवन में जिस तीव्रता से मादक द्रव्यों का सेवन करने की प्रवृति बढ़ रही है, वह भारी चिन्ता का विषय है। मादक द्रव्यों का प्रयोग जहाँ मानसिक संतुलन को विगाड़ देता है, वहाँ शरीर और मस्तिष्क के लिए भी उन की हानिकर सम्भावनायें अत्यधिक हैं।

योगासनों के अभ्यास के द्वारा मानव जीवन की नीरसता को दूर कर उसे सरस बनाया जा सकता है। यौगिक क्रियाओं के परिणाम कई बार देवी शक्ति की भाँति प्रतीत होत हैं। यौगिक आसनों के द्वारा शरीर-मन-आत्मा और मस्तिष्क में ऐसा संतुलन स्थापित होता है कि जीवन निर्वाह अबाधगति से होता जाता है। हृदय में सात्विक भावों का उदय होता है और ईर्ष्या, भय, द्वेष, क्रोध आदि वैकारिक भावों का क्रमशः शमन होकर मानसिक भावों में निर्मलता आती है। अतः आधुनिक युग के तनावपूर्ण वातावरण में मनुष्य को शान्ति और सुख प्रदान करने के लिए योगासनों का अभ्यास अपरिहार्य रूप से करना चाहिए । ये आसन जीवन की अनेक विषमताओं को दूर करने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। आसनों का अभ्यास करने वाले मनुष्य को जीवन की यथार्थता का अनुभव होता है और वह जीवन के वास्तविक आनन्द का उपभोग करने में समर्थ होता है।

आज अनेक लोग ऐसे हैं, जिनके पास धन-दौलत की कमी नहीं है और वे भौतिक विलासितापूर्ण जीवन में डूबे हुए हैं। किन्तु वास्तव में यदि देखा जाए तो उनके जीवन में क्षणभर के लिए भी सुख और शान्ति नहीं है। ऐसे लोग जीवन की वास्तविकता से काफी दूर रहते हैं। उनके पास सब कुछ होते हुए भी वे अपने जीवन की नीरस गाड़ी को खींचते जाते हैं। उनको होश तब आता है जब वे जीवन के सुनहरे क्षणों को कई बसन्तों के रूप में व्यतीत कर चुके होते हैं। यह एक निर्विवाद तथ्य है कि जीवन निर्वाह के इस नीरस और निर्जीव ढंग को आसनों के द्वारा ठीक किया जा सकता है। जीवन पद्धति को व्यवस्थित करने के लिए योगासन एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है उस में जीवन का वह वास्तविक आनन्द छुपा हुआ है जिसके लिए मनुष्य इधर-उधर भटकता है। आध्यात्मिकता के सोपान के रूप में आसन जीवन निर्वाह के लिए सही मार्ग प्रशस्त करते हैं । अतः निःसन्देह वे आधुनिक युग में

प्रत्येक व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण एवं उपयोगी हैं। कुछ लोग योगासनों की दुरूहता की शिकायत करते हैं। किन्तु यह बात सही नहीं है। कुछ प्रारम्भिक आसन तो इतने सरल हैं कि सहज ही उनका अभ्यास किया जा सकता है। अतः नवाभ्यासी को पहले सरल आसनों का अभ्यास करना चाहिए। ऐसा करने से कठिन आसन भी धीरे-धीरे सरल हो जाते हैं और मनुष्य उनका अभ्यस्त हो जात है। इसके अतिरिक्त किसी भी नवीन वस्तु को नए ढंग से सीखने में कुछ कठिनता का अनुभव तो होता ही है। मनुष्य में यदि रूचि, लग्न और उत्साह हो तो वह कठिन कार्य को भी करने में समर्थ हो जाता है। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह आसनों का अभ्यास भी प्रयत्नपूर्वक करे। आसनों के अभ्यास से निश्चय ही मानव जीवन में सरसता और यथार्थता का संचार होगा। वह जीवन में सच्चे सुख और सफलता का अनुभव करेगा ।

आसनाभ्यास से लाभ -

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि यौगिक आसन शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण, उपयोगी एवं लाभदायक हैं। इस का मुख्य कारण यह है कि आसनों का निरन्तर अभ्यास करने से उसका प्रत्यक्ष प्रभाव शरीर, मन और आत्मा पर पड़ता है। शारीरिक आसन मुख्य रूप से शरीर और उसके समस्त बाह्य-आभ्यन्तरिक अवयवों को प्रभावित करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि शरीर के रुग्ण अवयव भी क्रियाशील हो जाते हैं और प्राकृत रूप से अपना कार्य करने लगते हैं। शारीरिक आसनों का एक प्रभाव यह होता है कि शरीर में स्थिति अन्तःस्रावी ग्रन्थियाँ अपना कार्य सुचारू रूप से करने लगती हैं और सम्पूर्ण अन्तःस्रावी ग्रन्थि प्रणाली नियन्त्रित व सुव्यवस्थित हो जाती है। फलस्वरूप सभी ग्रंथियों से उचित मात्रा में रस का स्राव होता है जो विभिन्न दृष्टि से शारीरिक विकास के लिए उपयोगी एवं आवश्यक है।

आसनों का नियमित अभ्यास सभी आन्तरिक अवयवों को क्रियाशील बनाने में सहायक होता है। शरीर की माँसपेशियाँ स्वस्थ और क्रियाशील हो जाती हैं। आमाशय, ग्रहणी, आंत, यकृत्, प्लीहा, वृक्क हृदय आदि अवयव अपना कार्य सुचारू रूप से करते हैं। आसन के द्वारा श्वासोच्छ्वास की नियन्त्रित गति और सतत रूप से प्राणवायु का ग्रहण होते रहने से फुफ्फुस स्वस्थ एवं क्रियाशील रहते हैं। शरीर में रक्तशुद्धि और रक्त प्रवाह यथोचित रूप से होता है। इस से हृदय को शक्ति एवं गति मिलती है। शरीर में रक्त संचार ठीक रहने से अनेक रक्त सम्बन्धी व्याधियाँ नहीं हो पातीं और रक्तचाप भी सामान्य और नियन्त्रित रहता है। रक्त के द्वारा सभी अवयवों को सामान्य रूप से पोषण प्राप्त होता रहता है। शरीर के सभी संस्थान, जैसे रक्तवह संस्थान, श्वासवह संस्थान आदि प्राकृत रूप से अपना कार्य सम्पादित करते हैं और शरीर को पूर्ण स्वस्थ बनाए रखते हैं। सभी संस्थानों, अवयवों आदि के द्वारा प्राकृत रूप से अपना कार्य करने के कारण शरीर पर अकस्मात् रोगाक्रमण नहीं होता और शरीर रोगों से बचा रहता है। इस प्रकार आसनों के अभ्यास का प्रभाव शरीर के बाह्य और आभ्यन्तरिक दोनों संस्थानों एवं सम्बन्धित अवयवों पर पड़ता है, जिससे स्नायुमण्डल, अंतस्रावी ग्रंथियाँ, माँसपेशियाँ संधियां और अन्यान्य आन्तरिक अंग सुचारू रूप से अपना कार्य करते हैं।

आसनों के अभ्यास का जितना प्रभाव शरीर पर पड़ता है उतना ही प्रभाव मन पर भी पड़ता है। आसनों के अभ्यास से मन की चञ्चलता धीरे-धीरे दूर होकर मन में स्थिरता और शांति आती है। आसनों के दीर्घकालीन अभ्यास के आधार पर यह अनुभव किया गया है कि इससे अनेक प्रकार के मानसिक विकारों और व्याधियों के अपशमन में बड़ी सहायता मिलती है। आसनों का प्रत्यक्ष प्रभाव स्नायुमण्डल पर पड़ता है जिससे तनाव और उत्तेजना की स्थिति का निर्माण नहीं हो पाता और मानसिक

सन्तुलन बना रहता है। मन में उत्पन्न होने वाले विविध भावों पर आसनों का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। ऐसे भाव जो मानसिक विकृति को उत्पन्न करने वाले होते हैं वे भी आसनों के द्वारा प्रभावित और नियन्त्रित होते हैं। आसनों से मन की दृढ़ता और एकाग्रता की शक्ति का विकास होता है। अन्य मानसिक शक्तियाँ भी विकसित होती हैं। स्नायुमण्डल की शिथिलता से होने वाले विकारों के होने की सम्भावना भी निर्मूल हो जाती है। इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के लिए आसनों का अभ्यास उपयोगी है।

आसनों के द्वारा मस्तिष्क सम्बन्धी विभिन्न शक्तियाँ भी विकसित होती हैं। मस्तिष्क शक्तिशाली बनता है मस्तिष्क का संतुलन बना रहता है, जिससे यह सदैव स्फूर्त, क्रियाशील, सजग और स्वस्थ बना रहता है कुछ विशिष्ट आसन ऐसे भी हैं जो केवल मस्तिष्क को प्रभावित कर उसे न केवल स्वस्थ बनाते हैं, अपितु उस का अन्यान्य शक्तियों का विकास भी करते हैं।

आसनों में कुछ आसन ऐसे भी हैं जो आध्यात्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ऐसे आसन राजयोग के लिए साधना का मार्ग प्रशस्त करते हैं। इस दृष्टि से उन आसनों का कार्य समाधि की ओर अग्रसर करने वाले उच्च यौगिक अभ्यास, प्रत्याहार, धारणा, ध्यानादि के लिए शरीर को स्थिर बनाना है।

इस प्रकार शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक दृष्टि से आसनों की उपयोगिता निर्विवाद है। वे सभी वर्ग के सभी व्यक्तियों के लिए समान रूप से हितकारी हैं। अतः हमारे लिए आवश्यक है कि इनका अध्ययनकर समुचित रूप से ज्ञान प्राप्त करें और योग्य गुरु के मार्ग निर्देशन में इनका विधिपूर्वक अभ्यास करते हुए इनसे होने वाले लाभ अर्जित करें।

उपसंहार

योगदर्शन अथवा योगशास्त्र भारतीय संस्कृति के सुदृढ़ आधार स्तम्भों में से एक है। योग के द्वारा जहाँ भारतीय संस्कृति के दार्शनिक पक्ष की पुष्टि हुई है और उस की चिन्तनधारा में परिपक्वता आई है, वहाँ उस के द्वारा लोगों में आध्यात्मिक प्रवृत्ति का भी पर्याप्त विकास हुआ है। योगदर्शन ने लोगों को निवृत्ति के लिए प्रवृत्ति की प्रेरणा दी है। निवृत्ति को साध्य या लक्ष्य मानकर प्रवृत्ति की प्रेरणा या निर्देश देना योगशास्त्र की मौलिक विशेषता है। योगदर्शन एक ऐसा दर्शन रहा है, सिको सभी नास्तिक और आस्तिक दार्शनिकों ने स्वीकार किया है। इस विषय में सभी का मत एक ही है कि इस पृथ्वी पर जन्म लेने वाला प्राणी किसी न किसी दुःख से पीड़ित है। अतः जन्म को दुःखों का कारण माना जाता है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक। इन दुःखों से निवृत्ति केवल योग द्वारा ही हो सकती है। अतः इन की निवृत्ति के लिए योग का ज्ञान होना परमावश्यक है।

आधुनिक युग में जितनी अधिक महत्ता विज्ञान की सिद्ध होती है, उतनी ही योग की। वर्तमान समय में आधुनिक एवं कृत्रिमतापूर्ण भौतिकवादी जीवन के कारण तीव्रतापूर्वक योग की आवश्यकता अनुभव की जा रही है। योग सर्वत्र सम्भाव बनाये रखने में मुख्य भुमिका निभाता है। चाहे वह शारीरिक क्षेत्र हो, सामाजिक क्षेत्र हो या पर्यावरण सम्बन्धी हो।

आध्यात्मिक क्षेत्र में विकास के लिए योग की परमावश्यकता सिद्ध तो होती है, परन्तु इस के साथ समाज के भ्रष्ट रूप को सुधारने में भी योग महत्त्पूर्ण भूमिका निभाता है। पिछले कुछ समय से विद्वानों, चिन्तकों, विचारकों वैज्ञानिकों एवं चिकित्सकों

का ध्यान योग की ओर आकृष्ट हुआ है। शासन तंत्र भी इस ओर उन्मुख हुआ है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में योग को पर्याप्त स्थान दिये जाने हेतु लगातार प्रयत्न किए जा रहे हैं सम्भवतः इस का कारण यह है कि आधुनिक घुटनभरे, तनावपूर्ण, कुण्ठायुक्त वातावरण में जहाँ मनुष्य शांति की तीव्र अभिलाषा के साथ जीवन की सार्थकता हेतु प्रयत्नशील हैं, वहाँ उसे केवल योग के द्वारा ही कुछ राहत मिल सकती है। आधुनिक युग में विज्ञान ने मनुष्य को जितनी तीव्रता से भौतिकवाद और विलासिता की ओर अग्रसर किया है, उस से सम्पूर्ण विश्व में मनुष्य को अनेक विषमताओं, समस्याओं और कठिनाईयों का सामना करना पड़ रहा है जिसके कारण भीषण रूप से वह मानसिक अशान्ति का शिकार बना हुआ है। इसके अतिरिक्त कृत्रिमता और आडम्बरपूर्ण जीवन यापन के कारण आज विश्व में अनेक प्राणघातक रोगों का प्रादुर्भाव हो गया है, जिस का मानसिक अशाँति से निकटतम सम्बन्ध है। इसका निराकरण और पुनः मानसिक शान्ति की स्थापना योग द्वारा की जा सकती है। यही कारण है कि वैज्ञानिक चिकित्सक योग की ओर अधिक आकृष्ट हुए हैं। अतः मानसिक व्याधियों, हृदय रोग जैसे प्राणघातक भीषण रोगों तथा अनय विकारों के उपचार के लिए योग एवं यौगिक क्रियाओं का वैज्ञानिक रीति से प्रयोग कर समुचित लाभ उठाया जा सकता है।

मनुष्य के सर्वांगीण विकास में चरित्र-निर्माण चिकित्सा-विज्ञान, सामाजिक उत्थान, राष्ट्रोन्नयन एवं विश्वकल्याण की भावना को विकसित करने से लेकर परमात्मसाक्षात्कार तक योग अप्रतिम साधन है।

योगदर्शन में सर्वप्रथम मन को वश में करने की बात कही गई है। मन को वश में करने के लिये इस की वृत्तियों का निरोध परमावश्यक है और चित्तवृत्तियों के निरोध के लिए योग का ज्ञान होना अनिवार्य है। योग के ज्ञान के बिना मन को नियन्त्रित कर

पाना बहुत ही कठिन है। चूँकि मन स्वभाव से ही चञ्चल है, इस में रजोगुण का प्राबल्य रहता है, जिस के कारण इस का एक विषय पर स्थिर रहना कठिन है।

योग को मनोज्ञान भी कहा गया है। ऐसा इसलिए कहा गया है, क्योंकि योग भटकते हुए मन को नियन्त्रित करने की क्षमता रखता है। शरीर और मन के साथ-साथ सुस्वस्थ समाज की स्थापना में भी योग का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इस से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि योग के द्वारा व्यक्ति, समाज एवं विश्व में शांति की स्थापना हो सकती है। अतः सब को मन, वाणी, कर्म द्वारा योग के नियमों का पालन करना चाहिए। योग दर्शन में यम-नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधि - ये आठ अंग बताये गए हैं। इन अंगों के विधिपूर्वक पालन से मनुष्य सब प्रकार से रोगों और दुःखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है।

योगशास्त्र में यम-नियम के पश्चात् 'आसन' नामक तृतीय अंग का विवेचन किया गया है। आसन के विषय में कहा गया है कि यह सम्पूर्ण योग का मूल आधार है। आसन का प्रभाव साधक के शरीर, मन-इन्द्रियों और आत्मा पर संयुक्त रूप से पड़ता है, जिस से साधना के लिए आधारभूत सुदृढ़ भूमि का निर्माण होता है। तात्पर्य यह है कि आसन के द्वारा शरीर और मन में इतनी सहृदयता आ जाती है कि उस से साधक की साधना में शारीरिक या मानसिक व्यवधान नहीं आता। शरीर पर आसन का जो प्रभाव पड़ता है, उस से शरीर स्वस्थ एवं निरोग बना रहता है। शरीर के सम्पूर्ण अवयव अंगोपांग और उनकी सभी प्रकार की क्रियाएँ नियन्त्रित होती हैं, जिस से स्वास्थ्य की रक्षा तो होती ही है, अनेक प्रकार के रोगों का शमन भी होता है। अनेक आसन तो ऐसे हैं जो रोग या रोग की अवस्था विशेष में अत्यनत लाभकारी होते हैं। अतः रोगोपशमन या रोगों की चिकित्सा के लिए योग अपूर्व साधन है।

इस प्रकार योगासनो के द्वारा यहाँ स्वस्थ मनुष्यों के स्वास्थ्य का अनुवर्तन होता है वहाँ विकारग्रस्त अवस्था में रोगों का उपशमन भी होता है। आयुर्वेद का मूल प्रयोजन भी यही है-स्वस्थ मनुष्यों के स्वास्थ्य की रक्षा करना और रोगी मनुष्यों के रोगों का शमन करना। आयुर्वेद भी व्यक्ति के स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन की पुष्टि करता है। । (A sound mind in a sound body) अर्थात् स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन का निवास माना गया है। अनेक रोगों का नाश करने में जहाँ औषधियाँ असफल रही हैं वहीं योग के द्वारा उन रोगों का सफल उपचार हुआ है।

इस प्रकार श्रामिक, किसान, निर्धन व्यक्ति, स्त्री-पुरूष, बूढ़ा बच्चा, स्वस्थ शरीर के बिना किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकता। इसलिए महापुरूषों ने यह वचन कहे हैं कि शरीर को स्वस्थ रखना ही मनुष्य का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है। इस प्रकार भौतिक दृष्टि से देखने पर यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि योग शरीर एवं मन को स्वस्थ रखने में अचूक औषधि है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

ग्रन्थ का नाम	लेखक या सम्पादक	प्रकाशक	संस्करण
1. अमरकोश	अमरसिंह	चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ वाराणसी	1970
2. अथर्ववेद	निगम	चौखम्बा संस्कृत सीरीज़ वाराणसी	1969
3. कठोपनिषद्	निगम	गीता प्रेस गोरखपुर	1949
4. कठोपनिषद्	निगम	रतिराम शास्त्री सुभाष वाज़ार	1984
5. कुण्डलिनीयोग तत्व	दीवानगोकुलचन्द्र कपूर	मोती लाल बनारसीदास चौखम्बा संस्कृत संस्थान	1976
6. चरक संहिता	महामुनि चरक	मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली (वाराणसी)	1986
7. जयेन्द्रयोग-प्रयोग	डॉ0 रमेश कुमार	वाराणसी पटना मेघ प्रकाशन दिल्ली	1982
8. तेजोबिन्दुपनिषद्	निगम	गीता प्रेस गोरखपुर	-
9. निर्गुणोपनिषद्	निगम	गीता प्रेस गोरखपुर	-
10. पातञ्जलयोग दर्शन	पतञ्जलि	चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी	1994
11. पातञ्जलयोगदर्शन	रघुवीर वेदालङ्कार	ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली	2003
12. पातञ्जलयोगसूत्र	डॉ0 पवनकुमारीगुप्ता	"	1979
13. पद्मपुराण	पण्डित पन्नालाल	भारतीय ज्ञानपीठ काशी	1944

14.	भारतीयब्राह्मणों की गोत्रावली	लक्ष्मी नारायण शर्मा	विशन स्वरूप कालोनी - पानीपत	2005
15.	भगवद्गीता	निगम	गीता प्रेस गोरखपुर	1995
16.	भागवद्महापुराण	महर्षि व्यास	गीताप्रेस गोरखपुर	1995
17.	मण्डलोब्रह्मणोपषिद्	निगम	गीता प्रेस गोरखपुर	-
18.	मुण्डकोपनिषद्	निगम	गीताप्रेस गोरखपुर	2051
19.	योग और आयुर्वेद	आ. आचार्य राजकुमार जैन	प्राणाशय जैनायुर्वेद शोध संस्थान (दिल्ली)	1997
20.	योगासन और ध्यान क्रियाएँ	मुनि किशनलाल	राजा पाकेट बक्स दिल्ली	2002
21.	योगसार संग्रह	डॉ0 पवनकुमारी	ईस्टर्न बक लिंकर्स दिल्ली	1981
22.	लिंगपुराण	महर्षि व्यास - प0 राम शर्मा	राष्ट्रीय प्रेस मथुरा	1969
23.	वेदान्तसार	सदानन्दयोगीन्द्र	रतिराम शास्त्री प्रिंटिंग प्रेस - मेरठ	1973
24.	शण्डिल्योपनिषद्	निगम	संस्कृत संस्थान ख्वाजा कुतुब बरेली ।	1969
25.	श्वेताश्वत्तरोपनिषद्	निगम	गीता प्रेस गोरखपुर	1949
26.	शुक्ल यजुर्वेद	निगम	वसन्तश्रीपादसातक्लेकर स्वाध्याय मण्डल, पारडी जि0 बेलसाड़	1918

27.	श्रीमदभगवद्गीता	जयदयाल गोचन्दका	गोविन्द भवन कार्यालय गीताप्रेस गोरखपुर	2004
28.	सर्वदर्शनसंग्रह	माध्वाचार्य	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	1984
29.	सर्वदर्शन संग्रह	माध्वाचार्य	चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी	1987
30.	सारावली	डॉ0 मुरलीधर चतुर्वेदी	मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, पटना	1977 - 1981
31.	सरसभारती	श्रीमतिवीणा जेरथ	नरेन्द्र पब्लिशिंग हाऊस जालन्धर	1986
32.	सुश्रुत संहिता	आचार्य सुश्रुत	मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, वाराणसी	1975
33.	हठयोगप्रदीपिका	स्वात्माराम योगीन्द्र	लक्ष्मी वेंकटेश्वर स्टीमूप्रेस बंबई ।	1992